

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186309

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 80.1
M 67.3 Accession No. H 3768

Author मिश्र, कृष्णमिशोर

Title आरतेन्दु काव्यावली, १९६२

This book should be returned on or before the date
last marked below.

भारतेन्दु काव्यादर्श

कृष्णकिशोर मिश्र

भारत-विद्या-प्रकाशन

एम० ए०

प्रत्यूष-प्रकाशन, कानपुर

प्रकाशक	—प्रत्यूष-प्रकाशन, रामबाग, कानपुर ।
लेखक	—कृष्णकिशोर मिश्र ।
मूल्य	—४=०० चार रुपये मात्र ।
प्रकाशनकाल	— १९६२ जुलाई ई० ।
आवरण चित्रकार	—बी० के० डे०, कानपुर ।
आवरण मुद्रक	—जाब प्रेस लि०, कानपुर ।
जिल्दसाज	—रफीक अहमद एण्ड सन्स, कानपुर ।
मुद्रक	—अमर मुद्रण कार्यालय, कानपुर ।

—: निवेदन :—

सन् १९४६ ई० मे, लखनऊ विश्व विद्यालय मे, मैं एम० ए० (स्पेशल) हिन्दी भाषा-साहित्य का छात्र था। विशेष-कवि का अध्ययन करने के लिये मैंने 'भारतेन्दु-हरिश्चन्द्र' को चुना। उसी समय इस संक्षिप्त प्रबंध का लेखन कार्य सम्पन्न हुआ था। किन्तु तब से लेकर अब तक इसकी पाण्डुलिपि योही पड़ी रही, कभी इस ओर दृष्टिपात करने का अवकाश ही न मिला।

संयोगवश, गत नवम्बर मास मे, प्रत्यूष प्रकाशन, कानपुर के साहित्य मर्मज्ञ श्री कैलाश नाथ जी त्रिपाठी से भेंट हुई। वार्तालाप के मध्य मे इस सम्बन्ध की भी चर्चा आई। दूसरे दिन श्री मान् त्रिपाठी जी ने उसे देख प्रकाशित करने की अपनी इच्छा प्रकट की। मैंने भी सोचा—जैसे यह पाण्डुलिपि यहाँ पड़ी है, वैसे ही प्रेस मे पड़ी रहेगी तो हानि ही क्या होगी?—पाण्डुलिपि कानपुर पहुँच गई। मैं निश्चिन्त हो गया। प्रसन्नता की बात है कि जनवरी के अन्तिम सप्ताह मे प्रतक छप कर तैयार भी हो गई।

हिन्दी की किसी पाठ्य-पुस्तक मे 'जमुना-छवि' शीर्षक कविता मुझे बड़ी रुचिकर प्रतीत हुई थी। तभी से भारतेन्दु-काव्य के प्रति एक लगाव सा स्थापित हो गया था। क्रमशः उनके प्रमुख ग्रन्थों का शुभ सम्पर्क मिलता गया। और मेरी सुनिश्चित धारणा दृढतर होती गई कि भक्ति-युग मे जो स्थान गोस्वामी तुलसीदास जी को प्राप्त था, वही स्थान आधुनिक युग के पूर्वादि मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी को प्राप्त है। अस्तु—जैसा कुछ मैंने कवि रूप मे समझा हूँ, पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत है।

भारतेन्दु जी सरल भाषा-शैली के पोषक थे । वाह्याडम्बर परिपूर्ण क्लिष्ट भाषा उन्हें प्रिय न थी । अतएव प्रस्तुत प्रबन्ध भी सरल भाषा-शैली में लिखा गया है । साथ ही इस बात का ध्यान रक्खा गया है कि उनके काव्य का कोई भी अङ्ग अछूता न रहे ।

प्रस्तुत ग्रन्थ की असफलता का सम्पूर्ण उत्तर दायित्व मुझ पर है, किन्तु श्रेय (यदि कुछ है तो) के अधिकारी परम श्रद्धेय डा० दीन-दयाल जी गुप्त, परमश्रद्धास्पद डाँ० केशरी नारायण जी शुक्ल, तथा पूज्य अग्रज डा० ब्रजकिशोर जी मिश्र, माने जायेंगे, क्योंकि सब कुछ उन्हीं का है । अन्त में मैं सुहृदवर श्री कैलाशनाथ जी का विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने प्रबन्ध को प्रकाशित करने की कृपा की है ।

विज्ञ पाठकों ने यदि एक बार भी इस ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़ने का कष्ट उठाया तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूंगा ।

बसन्त पंचमी
९ फरवरी १९६१ सीतापुर }

विनीत
कृष्णकिशोर

विषय सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठांक
१—	तत्कालीन परिस्थितियों राजनीतिक—आर्थिक—सामाजिक—धार्मिक—साहित्यिक	१—३२
२—	जीवन और व्यक्तित्व पूर्वजगण—जीवन और व्यक्तित्व—आकृति तथा स्वभाव— शील तथा दान ।	१६—३२
३—	रचना परिचय गद्य खण्ड—नाटक—इतिहास—काव्य खण्ड—धर्म ग्रन्थ —प्रेम फुलवारी—प्रेम विलाप—प्रेमाश्रु वर्षण—प्रेम माधुरी —प्रेम मालिका—प्रेम तरंग—प्रेम सरोवर—वेणु गीत —राग संग्रह ।	३३—५६
४—	काव्य वर्गीकरण धार्मिक काव्य—सिद्धान्त प्रतिपादक काव्य—मति विषयक काव्य—सात्विक तथा शृङ्गार भक्ति—शृङ्गार काव्य —राष्ट्रीय काव्य—राजभक्ति और राष्ट्रीयता तथा देश प्रेम—स्फुट काव्य—उर्दू काव्य—गीत संगीत काव्य—समस्या पूति—हिन्दी प्रचार—अनुवाद—खड़ी बोली और उर्दू मनो- रजन तथा चित्र काव्य—नाटकों में काव्य—काव्यालोचना —भाव सादृश्य—रसात्मकता—कहण रस—हास्य रस— वीभत्स रस—भयानक रस—रौद्र रस—अद्भुत रस—शान्त रस—अलंकारिकता—प्रकृति चित्रण—भाषा शैली—छन्द- लोकोक्तियाँ और मुहाविरे—राष्ट्रीय भावना तथा हिन्दी प्रचार ।	५७—५५
५—	भारतेन्दु जी का हिन्दी साहित्य में स्थान वीर काव्य—भक्ति काव्य—रीति काव्य—नवीन परिपाटी—हिन्दी साहित्य में स्थान—मिश्र बन्धु, रामचन्द्र शुक्ल, श्याम सुन्दर दास, राधा कृष्ण दास, स्वामी दया नन्द सरस्वती, बाबू शिवनन्दन सहाय, बाबा बृजरत्न दास, ग्रीन्स एफ० ई० की आदि विद्वानों के मत ।	१६६

विषय प्रवेश

तत्कालीन परिस्थियाँ:—(राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा साहित्यिक) आधुनिक युग प्रवर्तक भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी के काव्य का अध्ययन करने के पूर्व यह नितान्त आवश्यक हो जाता है कि उस समय की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों पर एक दृष्टि डाल ली जाय; क्योंकि साहित्य तथा समाज अन्योन्याश्रित है और इसी कारण भारतेन्दु जी के काव्य का अध्ययन करने में इनसे सहायता मिलेगी।

आधुनिक युग का प्रारम्भ उस समय से होता है जब भारत में ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित हो चुका था। सन् १८५७ का विद्रोह भारत के इतिहास तथा साहित्य में बहुत ही महत्वपूर्ण घटना है। इसका प्रभाव भारत के आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक सभी क्षेत्रों पर पड़ा। भारतीय शासन ईस्ट इन्डिया कम्पनी से हट कर ब्रिटिश पार्लियामेंट के हाथों में पहुँच गया। यद्यपि अंग्रेजों के आने के पूर्व ही भारतवासियों में जातीय संगठन के अनेक अवसर आये थे किन्तु इसका विशेष सूत्र पात इसी समय से हुआ। राज्य मुसलमानों के हाथों से निकल कर विजातीय तथा विधर्मी अंग्रेजों के हाथ जा पहुँचा। मुसलमानों को यह अच्छा न लगा। मराठे भी इस बात से संतुष्ट न थे। बंगाल आदि की कम्पनियों के अत्याचार भारतवासी अभी भुला न सके थे। और इसी कारण भारतेन्दु काल की राजनीतिक परिस्थितियों

में परिवर्तन हो रहा था। महारानी विक्टोरिया की घोषणा का जनता ने स्वागत किया। भारतीयों को पूर्ण विश्वास हो गया कि अंग्रेजों की नीति में परिवर्तन होगा। और इन्हीं आशाओं से प्रेरित उनके हृदय में राजभक्ति का उदय हुआ।

देश के राजभक्ति विषयक अनेक पत्र पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं जिनमें भारत के भविष्य तथा अंग्रेजों के प्रति असन्तोष के निराकरण का प्रयत्न किया गया। विक्टोरिया जयन्ती, वायसराय ड्यूक, गवर्नरों के आगमन तथा अफगान युद्ध आदि विषयों पर अनेक सहानुभूति पूर्ण कविताएँ आदि प्रकाशित होनी प्रारम्भ हो गई थी। सामाजिक तथा धार्मिक कृत्य भी राजनीतिक भावों से परिपूर्ण थे। इस प्रकार राजनीतिक परिस्थितियों में राजभक्ति तथा देश में शान्ति उपस्थिति का निरन्तर प्रयत्न हो रहा था। अंग्रेजी शासन में पहले की भांति निर्दयता तथा कटुता का व्यवहार नहीं था। जनता का ध्यान शासकों को हो चला था। विक्टोरिया के शासन से देश में शान्ति स्थापित हुई। सन १८५७ के विद्रोहों से जनता बहुत दुखी थी और शान्ति की इच्छा थी। इस शासन ने भारत की सुरक्षा का आश्वासन दिया। ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन से देशवासी दुखी एवम् असन्तुष्ट थे। कम्पनी के कर्मचारी अपनी मनमानी करते तथा अत्याचारों से बाज न आते थे। इन्हीं कारणों से ब्रिटिश पार्लियामेंट ने भारतीय शासन को अपने हाथों लेना अधिक उचित समझा और कुछ काल के लिये यह नीति देश हितकर सिद्ध हुई। विक्टोरिया की घोषणा से आश्चस्त होकर भारतीयों ने राजभक्ति को अपनाया। भोली भाली भारतीय जनता ने उन कोरी बातों पर विश्वास किया परन्तु वे सब्ज बाग हमें आज भी दिखाये जा रहे हैं। थोड़े दिन उपरान्त जनता में फिर असन्तोष फैलने लगा। फिर भी, शासन की नवीन सुविधाओं, विज्ञान के नवीन आविष्कारों से भारतीय जनता चमत्कृत थी और इसी से वह अंग्रेजों के गुण गान भी करती थी। रेल, सड़कें, नहरें, बिजली, तार आदि वस्तुओं के प्रयोग

उनके लिये अद्भुत चमत्कार थे ।

जनता ब्रिटिश राज्य की पोपक होते हुए भी वास्तविक परिस्थितियों से परिचित थी । देशवासी भारत की प्राचीन सम्पन्नता और गौरव को भुला नहीं सके थे । वे देश की दयनीय दशा, दरिद्रता तथा नैतिक पतन देख देख कर क्षुब्ध हो रहे थे । अनेक प्रकार के 'कर' जनता पर लगे हुए थे । भारतीयों को दरिद्रता ने आ घेरा था, अतएव अंग्रेजी शासन की कटु आलोचना भी प्रारम्भ हो गई । और यही आलोचना भारतीय राजनीतिक चेतना की द्योतक सिद्ध हुई । यह चेतना पाश्चात्य देशों के सम्पर्क से ही आई । देशवासी भारत की तुलना पाश्चात्य देशों तथा इंग्लैण्ड से करने लगे । स्वायत्त शासन की ओर झुकाव भी इसी कारण से प्रारम्भ हुआ । अपने दासत्व का बोध भारतीयों के हृदय में प्रथम बार इसी समय से हुआ । अतएव उन्हें प्राचीन गौरव का स्मरण तथा वर्तमान दीन हीन अवस्था से घृणा होने लगी । क्षोभ तथा असंतोष जनता की समस्या थी जो उन्हें नित्यप्रति पीड़ित किये रहती थी ।

इस प्रकार राजनीतिक परिस्थितियों में देश को शान्त, सुखी और उन्नत बनाने के हेतु राजभक्ति का समावेश हुआ और आगे चलकर वही राजभक्ति असन्तोष से परिपूर्ण हो गई । अंग्रेजों के वादे कभी पूरे न होते थे । साथ ही 'करों' के बाहुल्य ने शोषण नीति का भेद स्वयं ही खोल दिया था । असन्तोष तथा दुःख के सिवाय विचार धारा के स्वाभाविक झुकाव का दूसरा मार्ग ही क्या हो सकता था और धीरे-धीरे आगे बढ़कर यही असन्तोष देश-प्रेम, देश भक्ति में परिणत हो गया । परिणाम स्वरूप कांग्रेस की स्थापना हुई । इसकी स्थापना से जनता के राजनीतिक तथा तत्सम्बन्धी अन्य ध्येय सम्मुख आए । जनता को विश्वास हुआ कि राजनीतिक हलचल उत्पन्न कर के हम देश की स्वतन्त्रता पा सकते हैं और यही वह समय था जब कवि समुदाय भी इस मार्ग पर अग्रसर हुआ । इन्हीं विचारों के आधार पर देश प्रेम की ओर अन्य जनता भी उन्मुख हुई । उन्हीं महापुरुषों के प्रयत्नों के

फल स्वरूप आज कांग्रेस न जाने कितना कार्य कर रही है। और भारतीय स्वतन्त्रता के लिए जी जान तोड़ कर प्रयत्न कर रही है।

आर्थिक परिस्थिति :- जनता की आर्थिक स्थिति उसका सबसे महत्वपूर्ण विषय है; क्योंकि भरण पोषण की समस्या ही देश को उन्नत अथवा अवनत बनाती है। देश के कर्णधार अथवा कवि देश की आर्थिक पराधीनता दूर करने में व्यस्त हुये। इस क्षेत्र में जागृति उत्पन्न करने के लिए औद्योगिक काम धन्धों, भारतीय व्यवसायों तथा देशवासियों की अकर्मण्यता आदि की कटु आलोचना आदि की जाने लगी। देश की आर्थिक दशा सुधारने के लिए स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार किया गया। कवियों की वाणी से उनके गौरव गीत गाए गए। साथ ही पाश्चात्य तथा विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का भी प्रचार किया गया।

समय के साथ जनता का ध्यान ग्रामों की ओर भी आकर्षित हो गया था। देश तथा ग्रामों की दीन हीन दशा तथा उनके प्रति सहानुभूति होने लगी। देश के कर्णोत्पादक दृश्यों के चित्रण हमें मिलने लगे। भारत की कृषि सम्बन्धी उन्नति के लिए किसानों को नवीन ध्यान देने की प्रेरणा की गई। इस प्रकार भारतेन्दु जी के समय की अनुभूति व्यापक और उदार हो गई थी, अतएव आर्थिक स्वाधीनता का ध्येय सन्मुख आया। भारतीय धन का अपहरण विदेशियों द्वारा हो रहा है यह भारतीय समझने लगे। और इससे वे क्षुब्ध भी हुये। निराशा पूर्ण काव्य की रचना हुई। दरिद्रता, दासता, लोभ आदि कूवृत्तियों को दूर करने के उपाय किये जाने लगे। कवियों के लिए यही काव्य विषय बन गए। भारतीयों को यह भली भाँति विदित हो गया कि शासक शोषण नीति के पोषक है। वह हमें निरालम्ब बना के ही छोड़ेंगे।

इस प्रकार देश की वाणी आर्थिक सुधार एवम् उन्नति की ओर अग्रसर हो चली। निस्सन्देह ये भावनाएँ कांग्रेस के कारण आई थीं।

किन्तु इसके पूर्व भी जनता तथा कवियों का ध्यान आर्थिक क्षेत्र में इन अवस्थाओं तक पहुँच चुका था। यद्यपि व्यक्तिगत अथवा परोक्ष रूप में जनता परिस्थितियों से परिचित थी किन्तु प्रत्यक्ष कार्य रूप में परिणत करने के लिए कोई कार्य क्रम नहीं था, इसी से जनता अधिकारियों से भारत की दीन दशा पर आँसू बहाती हुई प्रार्थना मात्र करती थी कि इस शोचनीय दशा का पुनरुद्धार किया जाय। आगे चल कर जब दोनों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और सब प्रकार से निराशा ही हाथ लगी तो कार्यशील एवम् उत्साहित जनता को इस क्षेत्र में भी असन्तोष ही दिखलाई पड़ने लगा, और कविता में किसान, श्रमजीवी, दरिद्रता, पूर्व गौरव, पूँजीवाद आदि आर्थिक विषय आने लगे। अतएव भारतेन्दु जी के समकालीन कवियों का झुकाव आर्थिक विषयों की ओर गया और यही आगे चल कर राजनीतिक आंदोलनों के अंग बन गए। भारतेन्दु जी के समय की आर्थिक स्थिति तथा चेतना इस प्रकार प्रवाहित हुई।

सामाजिक :— १८५७ के विद्रोह के उपरान्त अंग्रेजी साम्राज्य के स्थापित हो जाने पर सामाजिक जीवन में क्रान्ति स्थापित हो गई। राज्य का संचालन कम्पनी के हाथों से निकल कर ब्रिटिश पार्लियामेंट के हाथ जा पहुँचा। भारत का सम्बन्ध क्रमशः सीधे इंग्लैण्ड से हो गया। अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ने लगा। हिन्दू धर्म की कट्टरता को गहरा धक्का लगा। रूढ़िवाद की उपेक्षा प्रारम्भ हुई। देश की कूपमडकता दूर होने लगी। परिवर्तनशील संसार में भारत भी समय की गति के साथ चलने के लिए प्रयत्नशील हुआ। समाज सुधारकों की अवतारणा हुई। स्वामी दयानन्द के इस क्षेत्र में उतर आने से हिन्दू समाज में नवीन जीवन का प्रादुर्भाव कट्टरपन का ह्रास तथा उदासीनता का त्याग हुआ। धार्मिक आडम्बरों के साथ ही समाज का अन्ध विश्वास, प्राचीन रीति रिवाज, जिनकी आवश्यकता अब न थी, दूर होने लगे। आर्य समाज का श्रम सफल हुआ। हिन्दू जनता में

सामाजिक चेतना का उदय प्रारम्भ हुआ ।

परन्तु भारत पर अंग्रेजी सभ्यता और शासन का प्रभाव दिन दूने और रात चौगुने वेग से पड़ रहा था । आर्य समाज के कारण इस प्रभाव का पडना अधिक सुगम हो गया । साथ ही यह प्रभाव इतना गहरा पड़ा कि हिन्दू जनता में स्वयम् अपने धर्म से घृणा-भाव उदय हो गया । यहाँ तक की उनको अपना धर्म परिवर्तन करने में भी कोई हिचक नहीं रही । स्वामी दयानन्द यद्यपि वैदिक आदर्शों के समर्थक थे, धार्मिक कट्टरता, अन्ध विश्वास तथा अन्य दुर्गुणों को दूर करने का ही प्रयास उनके धर्म में किया गया था, परन्तु अततोक्तत्वा फल इसका उलटा देख कर कुछ लोग सनातन धर्म के परिष्कृत रूप को फिर से स्थापित करना चाहते थे । अतएव जनता में एक दल तो वह निकला जो सनातन धर्म का परिष्कार कर के फिर से हिन्दू धर्म को ही सर्वश्रेष्ठ देखना चाहता था और दूसरा वह जो इससे विमुख हो चुका था ।

यद्यपि यह विभिन्न सम्प्रदायी, कट्टर पथी, सुधारवादी तथा आर्य समाजी, विभिन्न मार्ग ग्रहण किये चल रहे थे किन्तु ध्येय सभी का कल्याण ही था । कट्टरपथी परम्परा की रक्षा करना चाहते थे ; वर्णाश्रम धर्म के पक्षपात में उनको कल्याण दिखलाई पड़ता था । विधवा विवाह उनके लिये पाप था । पश्चिमी सभ्यता के वे घोर विरोधी थे । परन्तु इसका निष्कर्ष यह नहीं निकालना चाहिये कि समाज के दोषों से वह अनभिज्ञ थे । उनका विश्वास था कि शास्त्रीय बचनों को अक्षरशः पालन करने से यह सभी दोष निवारित किये जा सकते हैं । इधर सुधारवादी पश्चिमी विचार धारा एवम् विद्या से प्रभावित थे और इन्हीं की सहायता से भारत की सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन करना उनका अभीष्ट था । इंग्लैण्ड तथा अन्य पश्चिमी देशों की प्रत्यक्ष समृद्धि, धनाढ्यता तथा उन्नति, आदर्श रूप इनके सम्मुख थी । इसी प्रकार से आर्य समाजी भी वैदिक धर्म का प्रचार करते हुये समाज

को कट्टरता से दूर करना चाहते थे। इन्हीं परिस्थितियों से प्रभावित, सामाजिक कुरीतियों से प्रेरित, भारत की जनता एवम् कवियों ने धर्म, कर्म, योग, भक्ति तथा प्राचीन सामाजिक समृद्धि का ही गुणगान किया। कुछ ने कुरीतियों पर क्षोभ प्रदर्शित करते हुये वर्तमान दशा को पश्चिमी प्रभाव से उन्नत करने का प्रयत्न किया, पर समष्टि रूप से इस समय की जनता परिवर्तन की ओर उन्मुख न थी और इसी से काव्य का रूप प्राचीन परिपाटी की ओर ही अधिक झुका हुआ रहा।

जैसा कि कहा जा चुका है सुधारवादी, अंग्रेजी विचार धारा से प्रभावित थे। वे पाश्चात्य मनोदृष्टि के सहारे सामाजिक उन्नति और हिन्दू धर्म का कल्याण करना चाहते थे। परन्तु भारतीय संस्कृति के सघर्ष के प्रति दोनों की विचार शैली एक थी। और इस दृष्टि से सुधारवादी भी कट्टर पंथियों के साथ ही थे। सुधारवादी जनता सामाजिक विषयों में रुचि रखती थी। संलग्नता, तत्परता से सामाजिक दोषों का निराकरण, इनका ध्येय था। धार्मिक विवाद, बाल विवाह, विधवा विवाह, जाति भेद, अन्ध विश्वास, समुद्र यात्रा-निषेध आदि समस्याएँ सुधारवादियों के मस्तिष्क में निरन्तर विद्यमान रहा करती थी। पश्चिमी सभ्यता से ओत प्रोत विचारों का प्रभाव इतना अधिक पड़ा था कि भारत अपने में शीघ्रातिशीघ्र परिवर्तन देखना चाहता था। किन्तु पहले ही कहा जा चुका है कि मध्यम मार्ग के उपासक दोनों स्थितियों को महत्व देते थे। वह न तो प्राचीन धर्म को छोड़ सकते थे और न अन्धविश्वास तथा कट्टरपन को ही निभाना चाहते थे। इस प्रकार इन विचारों वाली जनता सुधारों के समाकेष एवं सामंजस्य से देश, समाज का कल्याण करना चाहती थी। सुधारवादी जनता स्त्री-शिक्षा, विद्या प्रचार, छूआ छूत के ढोंग का निवारण, अन्धविश्वास, धार्मिक कट्टरता, बाल विवाह, वृद्ध विवाह, झूठ, चोरी, कामुकता आदि के निवारण के प्रयत्न को लेकर चली थी। प्रायः इन्हीं

विषयों को लेकर आर्यसमाजी भी क्षेत्र में आये थे। उनमें विशेष अन्तर न था, केवल वैदिक धर्म का पालन आर्य समाजी विशेष चाहते थे। इसी के साथ आर्य समाजियों का परिवर्तन उग्र रूप धारण करके आया जब कि सुधारवादी इसके पक्ष में न थे। वह सभी सुधार शान्ति पूर्वक करना चाहते थे। रूढ़ि गत अन्धविश्वास, मूर्ति पूजा आदि बाह्याडम्बर आर्यसमाजी नहीं चाहते थे। इनका खुल्लम खुल्ला विरोध उन्होंने किया। इस प्रकार आर्य समाज, वेद और वैदिक सिद्धान्तों का आधार लेकर समाज की सहायता कर रहा था। कुछ भी हो, समाज की उन्नति का श्रेय आर्य समाज को है और रहेगा।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का निर्माण करने में आर्य समाजी, सुधारवादी तथा कट्टर पंथी लोगों का विशेष महत्वपूर्ण स्थान था। इनका ध्येय एक था यद्यपि मार्ग अलग अलग।

अतः यह कहा जा सकता है कि सांस्कृतिक उद्धार का प्रारम्भ हो रहा था। समाज के दोषों पर सबकी निगाह पड़ चुकी थी। स्वामी दयानन्द का प्रभाव विशेष रूप से पड़ रहा था। परिवर्तन पश्चिमी सभ्यता को लेकर प्रारम्भ हुआ था। ज्ञान चक्षु खुलने पर अपने ही धर्म की ओर जनता का ध्यान आकर्षित हुआ। पाश्चात्य सभ्यता में पूर्णरूपेण रंग कर भारत का धर्म बिगड़ने लगा था जिसका उद्धार सुधारवादियों ने प्रारम्भ किया। पश्चिमी विचारों की सत्यता में संदेह तथा संदिग्धता का भाव उत्पन्न हो गया। पश्चिमी विचार धारा तो आई किन्तु सभ्यता की सच्चाई में संदेह हो गया। हिन्दुत्व, भाषा, भोजन पान, वेश भूष आदि के प्रति आत्मीयता की ओर संकेत हुआ और हिन्दू लोग इस ओर आकर्षित होने लगे थे।

हिन्दुओं की संस्कृति, आचार-विचार, रहन-सहन, जिससे वे विमुख थे, आगे चल कर ठीक मार्ग पर आ गई। पश्चिमी सभ्यता से बचने का प्रयोग भी आगे चल कर हुआ। भारतेन्दु जी के समय में

सामाजिक स्थिति इस प्रकार से बहुत ही महत्वशाली थी। इसके पूर्व रीतिकाल का प्रभाव भी बहुत गहरा था। अतएव इसी समाज में नव जीवन का संचार हुआ और सामाजिक उत्थिति का प्रारम्भ हुआ।

धार्मिक परिस्थितियाँ :- भारतेंदु काल की धार्मिक परिस्थितियों में भक्ति कालीन परम्परा तथा कुछ हद तक रीति काल की भी परम्परा का समावेश पाया जाता है। इस समय की स्थिति में धार्मिक प्रभाव स्वतन्त्र रूप से प्रायः नहीं पाया जाता। पूर्व की ही भाँति विष्णु, शिव, देवी-देवताओं की भक्ति का प्रदर्शन मिलता है। अवतार-वाद, मूर्ति पूजा, कर्म काण्ड का परम्परागत रूप यहाँ भी दृष्टिगोचर होता है। नवधा भक्ति के आधार पर उपास्यदेव के प्रति श्रवण, कीर्तन, अर्चन, वन्दन, आत्म-समर्पण आदि की भावना शुद्ध हृदय से की गई पाई जाती है। प्रेम, राग भावों की शुद्धता बहुत कुछ भक्ति काल की ही भाँति समन्वित हुई। रीति काल में यह शुद्धता न थी किन्तु आवरण यही था। इस काल में धार्मिक भावनाओं की शुद्धता सराहनीय है। भावों में कोई नवीनता न होते हुये भी रूढ़िगत धार्मिक भावनाओं में सत्यता (Sincerity) तथा निजी शैली का प्रयोग अपना ही महत्व रखती है।

कबीर, तुलसी, सूर आदि की भाँति कुछ कवि उपदेश भी देते थे। इन उपदेशों में आदर्श, नीति, कर्म काण्ड आदि के ऊपर निर्धारित थे। फिर भी अन्य धर्मों के प्रति कोई घृणा का भाव नहीं उठाता था। जिसको जो धर्म भाता था वह उसी का अनुगामी हो सकता था। जनता में यह विश्वास हो चला था कि समस्त धर्मों के मूल सिद्धान्त एक है और सभी धर्म एक ही ईश्वर की ओर संकेत करते हैं। अतएव प्रेम, सच्चाई तथा सच्चरित्रता ही धर्मों के मूल मन्त्र है। जैन धर्म का भी उस समय उत्कर्ष था। भारतेंदु जी की उस पर आस्था थी तथापि वे उसके अनुयायी नहीं थे। वैष्णव धर्म ही उनका धर्म था किन्तु अन्य धर्म

उनको विरक्त नहीं कर सकते थे । साथ ही जिन धर्मों का आधार प्रेम था वही उत्तम धर्म था । जनता पर प्रेम आदि का प्रभाव अधिक था । बाह्य आवरण से वह कम प्रभावित होते थे । अस्तु यद्यपि हिन्दू धर्म का चलन प्राचीन परम्परा के आधार पर था किन्तु आन्तरिक भावनाओं में उपर्युक्त विचार-परिवर्तन हो गया था । वेद पुराण आदि प्राचीन धर्मों का प्रचलन अब भी था किन्तु कट्टरता तथा अंध विश्वास की ओर से सभी शक्ति हो गए थे । धार्मिक उदारता का समावेश प्राचीन काल से अब अधिक था । मतमतांतरों के झगड़ों में जनता पड़ना अधिक उचित नहीं समझती थी । अवतार वाद और बहुदेवोपासना में विश्वास अब भी ज्यों का त्यों चल रहा था फिर भी इनको लेकर विवादों में जनता पड़ना न चाहती थी । वास्तविक भक्ति, विचार स्वातन्त्र्य, भ्रातृत्व की भावना आदि प्रवृत्तियाँ धार्मिक विचारों में अधिक आ रही थीं । अधानुकरण अप्रिय हो चला था । धर्म-कर्म का बाह्य आडम्बर यद्यपि एकाएक छोड़ा नहीं जा सकता था फिर भी धार्मिक कट्टरता के स्थान पर मनुष्यत्व का ग्रहण अधिक महत्वशाली हो गया था । अतएव स्पष्ट हो जाता है कि भक्ति कालीन परम्परा का ही अधिक प्रभाव इस समय में था । निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि इस समय की धार्मिक परिस्थिति भक्ति काल की परिस्थितियों के ही अनुकूल थी । उदार वृत्ति के अतिरिक्त उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था ।

साहित्यिक परिस्थिति :- सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि परिस्थितियों के साथ ही साहित्यिक परिस्थितियाँ भी उन्हीं के अनुरूप हो चलीं । उपर्युक्त परिवर्तन साहित्य क्षेत्र में भी आने लगीं । परन्तु यह स्पष्ट है कि ये परिस्थितियाँ बहुत अधिक मात्रा में परिवर्तित नहीं हुईं । सस्कृत में साहित्य रचना एक प्रकार से बन्द थी । कुछ देशों में सस्कृत का पठन पाठन तो रहा किन्तु शिक्षित लोगों में साहित्य चर्चा की दृष्टि से नहीं । प्राकृत, पाली और अपभ्रंश को तो लोग बिल्कुल भूल ही गये । प्राकृत-पाली का प्रयोग होता था किन्तु संकुचित

क्षेत्र ही में। बौद्ध साहित्य नहीं पढ़ा जाता था। किन्तु संस्कृत तथा प्राचीन गौरव के कारण उसका अध्ययन कुछ हद तक बना रहा। संस्कृत जैसे वर्ग का साहित्य था। पाली-प्राकृत में मध्यम और निम्न वर्ग का साहित्य मिलता है। सर्व साधारण का सच्चा चित्र हम तक नहीं पहुँचा। इस काल का सबसे महत्वपूर्ण अंग हिन्दी और उर्दू साहित्य है। हिन्दी साहित्य की भारतीय प्रणाली के अतिरिक्त उर्दू की विदेशी शैली भी बराबर चलती रही और देशवासियों का एक अंग इसकी पूति करता रहा। इसी कारण प्राचीन भारतीय प्रणाली पर भी इसकी छाप लगी। इसके पश्चात् एक नई साहित्य धारा का प्रादुर्भाव हुआ। अंग्रेजी शिक्षा ने यहाँ के साहित्य पर बहुत गहरी छाप लगाई। इससे हिन्दी साहित्य में अधिकांश ग्रन्थ अनुवाद किए गए। मौलिक साहित्य की न्यूनता देख कर ही यह कार्य प्रारम्भ हुआ था परन्तु पाश्चात्य सभ्यता एवम् भाषा से परिचित न होने के कारण अनुवाद कार्य को उतना प्रोत्साहन नहीं मिल सका जितना कि उचित था। यह नवीन धारा परिस्थितियों के कारण उत्पन्न हुई थी और शायद परिस्थितियों के ही कारण नवीन रूप धारण करती रहे।

साहित्यिक क्षेत्र में भाषा, छंद तथा शैली में भी कुछ विशेष परिवर्तन नहीं हुये और न नवीन तथा स्वतन्त्र प्रयास ही दृष्टिगोचर होता है। अधिकतर कवियों ने भक्ति और रीति काल के कवियों की ही शैली तथा भाषा आदि को ग्रहण किया। भाषा, छंद तथा भाव स्पष्टीकरण शैली को हम बहुत कुछ उसी भाँति पाते हैं जो भक्ति तथा रीतिकाल में प्रचलित थी। काव्य भाषा, ब्रज भाषा, बुन्देलखण्डी, अवधी आदि ही नहीं किन्तु गद्य में खड़ी बोली का प्रचलन हो चुका था।

काव्य में प्राचीन परम्परा से चले आते हुये छंद शास्त्र का ही अनुकरण किया गया है। छंद सौन्दर्य का नवीन उपक्रम नहीं दृष्टिगोचर

होता । भक्ति तथा रीतिकाल के कवित्त, सवय्या, रोला, दोहा, छप्पय तथा अन्य छंदों का प्रयोग उसी भाँति किया गया है । इन छंदों में कवित्त, सवय्या तथा रोला कवियों को अधिक प्रिय छंद थे । प्रेम श्रृङ्गार आदि कोमल भावों का वर्णन इनमें अधिक सुन्दरता से निभाया जा सकता है । अतएव नवीन छंदों का ग्रहण इस समय से नहीं हुआ और समयानुकूल वह कुछ खटकता भी नहीं । इन साहित्यिक छंदों के अतिरिक्त जनता कुछ लोकप्रिय छंदों में अपनी भावनाओं को व्यक्त करके लोक साहित्य की सेवा में दत्तचित्त थी । ऐसे प्रमुख छंद लावनी तथा कजली थे । इनमें जनता तथा कवि भी अपने सरल भावों को विशेष रूप से व्यक्त करते थे ।

इस प्रकार शैली की प्राचीनता का परिचय हमको मिल जाता है । कल्पना, विचार, अलंकार आदि सभी कुछ प्राचीन धारा के आधार पर प्रयुक्त होते थे । परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि उनमें कोई विशेष नवीनता थी ही नहीं । वास्तव में रूढ़िगत परम्परा के साथ ही सरसता, सरलता आदि काव्य गुणों का ध्यान अधिक रक्खा गया जिससे कवि अधिक लोकप्रिय बन सके । यद्यपि नवीन शैली का सृजन नहीं हुआ किन्तु भावनाओं के साथ-साथ कविता का ढाँचा अलंकारों के भार से मुक्त, शुद्ध साहित्य तथा नैसर्गिक रूप में सम्मुख आया । यहाँ सूर, केशव देव, बिहारी, मतिराम, घनानन्द आदि सभी की छटाएँ दृष्टिगोचर होने लगी । किन्तु भाषा, शैली और भावनाओं की प्राचीनता होते हुए भी उनके कला पक्ष में भाषा की सरलता, सुबोधता, सरसता अधिक आ गई । भाषा का दूसरा गुण हमें इस युग में उसकी स्वाभाविकता दिखलाई पड़ा । शब्दों का तोड़ मरोड़ बहुत कम हो गया । अप्रयुक्त, रूढ़ तथा प्रभावहीन शब्दों का प्रयोग भी कुछ त्याग दिया गया । अलंकार बाहुल्य, कठिन दुष्कर शब्दों का प्रचार भी कम हुआ । मधुरता का ग्रहण अधिक होने लगा । ब्रज भाषा आदि के अप्रचलित प्रान्तीय शब्दों का प्रयोग कम होने लगा । इस प्रकार शैली सरल, सरस

तथा प्रवाहमयी हो गई ।

भारतेन्दु काल की काव्य भाषा ब्रज भाषा ही है, खड़ी बोली में भी यद्यपि कविताओं की रचना होने लगी थी । लावनियाँ, गजल, कजली आदि खड़ी बोली में भी लिखी जाने लगी थीं, किन्तु खड़ी बोली लोक स्वीकृत काव्य भाषा नहीं थी । गद्य, पद्य मय काव्यों में भी रचना हो रही थी । फिर भी खड़ी बोली का प्रचार पर्याप्त मात्रा में हो चला था । गद्य की भाषा खड़ी बोली के रूप में आ खड़ी हुई थी । इस प्रकार से हम स्पष्ट देख सकते हैं ब्रजभाषा, अवधी आदि के साथ-साथ खड़ी बोली का प्राद्यान्य प्रारम्भ हो चुका था । पद्य में ब्रज भाषा तथा गद्य में खड़ी बोली का प्रयोग होने लगा था । भारतेन्दु जी के समय के अन्तिम वर्षों में खड़ी बोली अपनी किशोरावस्था में पहुँच चुकी थी ।

अतएव भाषा, शैली में विशेष परिवर्तन न होते हुये भी नवीन भावनाओं का समावेश हो चला था । और इसी से नवीन भावनाओं का प्रारम्भिक युग, यही भारतेन्दु का युग, कहा जा सकता है । भारतेन्दु जी के समय से काव्य की विचार धारा परिवर्तित हो चली थी ।

उपर्युक्त प्रकरणों में भारतेन्दु जी के समय की काव्य सम्बन्धी विशेष प्रवृत्तियों का परिचय मिल जाता है । परिणाम स्वरूप हम कह सकते हैं कि :—

ऐक्य और सामञ्जस्य भारतीय संस्कृति की प्रधान विशेषताएँ हैं । उस विश्व आत्मा से ऐक्य स्थापना की चेष्टा जीवन का परम उद्देश्य है । भारतीय जीवन, धर्म पर आश्रित है, इसी पर सामाजिक तथा आध्यात्मिक जीवन पुष्ट एवम् पूर्ण होता है । आधुनिक युग की कसौटी, जिसमें देश विचार, वाणी, कार्य की स्वतन्त्रता, स्त्रीत्व की प्रतिष्ठा, भौतिक समृद्धि, साहित्य, विज्ञान, आदि सभी में हिन्दू समाज तथा संस्कृति का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क ने हमें बौद्धिक व्याख्या, तथा ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन का पाठ पढ़ाया । साथ ही देश भक्ति, नागरिक जीवन के उच्च

विचार, वैधानिक शासन, प्रजातन्त्र के आदर्श और राजनीतिक प्रतिभा की भेंट दी। भारत से पाश्चात्य प्रदेशों को एकता, जीवन की आध्यात्मिक प्रतिभा, उद्देश्य, प्रेम, अहिंसा, सहनशीलता आदि का पुरस्कार मिला। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव स्वरूप भारत में एक ऐसी मनोदृष्टि का प्रचार हुआ जो अपने को मनोवैज्ञानिक कहती हुई धर्म आदि सूक्ष्म विचारों को सन्देह और शंका की दृष्टि से देखने लगी और ईश्वर की सत्ता में अनास्था प्रकट करने लगी। फल स्वरूप हिन्दू समाज में आंदोलनों का जन्म हुआ। सामाजिक जीवन में असन्तोष उत्पन्न हुआ। फिर भी इनकी सच्चाई तथा इनके प्रतिपादक सच्चे थे। पाश्चात्य सभ्यता के अत्यधिक प्रभाव स्वरूप बृहत् समाज का स्थापन हुआ जिसे बिना ईसा के ईसाइत्व की उपाधि मिली अथवा दी गई। मद्रास में वेद समाज, बम्बई में प्रार्थना समाज इसी की शाखा स्वरूप सम्मुख आए। इनके शिक्षा सम्बन्धी कार्यों का महत्व मानते हुए भी यह कहना पड़ता है कि इनके प्रवर्तक और पक्षपाती पाश्चात्य सभ्यता और धर्म में अत्यधिक रंगे होने के कारण सामान्य जीवन के प्रवाह से बहुत दूर जा पड़े और भारतीय धर्म तथा समाज के महत्व को न समझ सके। इस प्रकार आर्य समाजी केवल ऋग्वेद को अपना आधार मानते थे और इसी कारण यह समाज हिन्दुओं की परम्परा को न अपना सका और फल स्वरूप हिन्दुओं की सार्वभौमिकता, उदारता, उनकी कला आदि को लेकर थियोसोफिकल सोसाइटी ने हमारी दृष्टि हमारी प्राचीन संस्कृति की ओर फेरी। यह उस समय हुआ जब कि पाश्चात्य प्रभाव से, शिक्षा की दूषित प्रणाली से भारतवासियों की आंखें बन्द हो रही थी। फिर भी यह सब सामान्य जीवन से दूर ही था और यही सब समाज के आंदोलन या विद्रोहात्मक रूप थे। यहाँ यह कहना आवश्यक होगा कि विद्रोह के सहारे हम अधिक दूर नहीं जा सकते। सच्ची उन्नति केवल अतीत के गौरव, वर्तमान की आवश्यकताओं और जातीय जीवन के सच्चे आदर्श से हो सकती है। किन्तु परिस्थिति दूसरी ही थी।

पाश्चात्य सभ्यता के फल स्वरूप प्राचीन नियमों की अवहेलना हो रही थी। आधुनिक शिक्षा हमको अपने धर्म, आदर्श, कला, दर्शन आदि से विमुख बना रही थी। जनता संस्कृत आदि भाषाओं से अनभिज्ञ हो रही थी। स्पष्ट है कि भारत को अपनी भाषा, प्राचीन साहित्य की शिक्षा, भारतीय संस्कृति तथा आदर्श का ग्रहण, भारतीय इतिहास की सच्ची रूपरेखा, संगठन तथा एकता की आवश्यकता थी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इन सब आंदोलनों से परिचित थे। इन आंदोलनों की आवश्यकताओं तथा इनकी सीमाओं से भी अवगत थे। इन्हीं कारणों से समाज की उन्नति के हेतु पाश्चात्य सभ्यता के उन सब विशेष भावों का स्वागत किया और शिक्षा, नागरिकता, ऐतिहासिकता, भौतिक समृद्धि के साधन, विज्ञान, कला आदि को लेकर जीवन क्षेत्र एवम् साहित्य क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। किन्तु यह न भूलना चाहिये कि इनका मूल आधार भारतीय धर्म, संस्कृति ही था। दूसरे शब्दों में धार्मिक आधार प्रेम, सत्य, शान्ति और शान्तिमय जीवन की आकांक्षा सदैव बनी रही। इसी से समाज सुधार का प्रचार करते हुए भी समाज के प्राचीन धार्मिक आधार एवम् व्यवस्था का तिरस्कार न किया। नवीन वैज्ञानिक दृष्टि के समर्थक होते हुये भी आध्यात्मिकता की अवहेलना नहीं की। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय संस्कृति का सामाज्य भारतेन्दु के व्यवहार के बीच में मिलता है। जीवन और साहित्य के क्षेत्र में इन्होंने इसी नीति का प्रयोग किया है।

जीवन और व्यक्तित्व

पूर्वजगण :— हिन्दी भाषा के उन्नायक, नागरी-नागर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र एक बड़े ही प्रतिष्ठित धनाढ्य घराने के रत्न थे। ये अग्रवाल वैश्य-कुल भूषण थे। इनके पूर्वज दिल्ली प्रान्त के रहने वाले थे। शाहजहाँ का लड़का शाहशुजा जब बंगाल का सूबेदार हुआ तब ये लोग उसी के साथ बंगाल चले आए। इनके आदि पुरुष राय बाल-कृष्ण जी थे, उनसे पहले के व्यक्तियों के नाम नहीं मिलते। बाल कृष्ण के पुत्र लक्ष्मी राय हुए और उनके गिरधरलाल। इन्हीं गिरधर लाल के पुत्र सेठ अमी चन्द हुए।

सेठ अमीचन्द मुर्शिदाबाद के रहने वाले थे। यह बहुत बुद्धिमान थे। जीवन में इन्होंने अपार सम्पत्ति अर्जित की थी। आपको राजा की पदवी मिली थी। बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला के विश्वास पात्र मन्त्रियों में से आप भी एक थे। पलासी की लड़ाई के पश्चात्, सिराजुद्दौला के मरने पर, अंग्रेजों से इनको पुरस्कार स्वरूप वह ३० लाख रुपये नहीं मिले जिसकी झूठी लिखा पढ़ी कर दी गई थी। इसी शोक में यह पागल हो गए। इनके बेटे बाबू फतेह चंद जी थे। पिता के स्वर्गवासी हो जाने पर अपनी ससुराल चौखम्भा काशी में आकर निवास करने लगे। इनके श्वसुर के कोई भी सन्तान न थी अतएव उनके उत्तराधिकारी आप ही हुए। श्वसुर की मान-मर्यादा को निभाते हुए ये बहुत ही सादे ढंग से जीवन बिताने लगे। ये हनुमान जी के बड़े भक्त

थे । दवामी बन्दोबस्त के समय इन्होंने ईस्ट इन्डिया कम्पनी को बहुत सहायता पहुँचाई थी । बाबू फतेहचंद जी के पुत्र बाबू हरखचंद जी थे । इनके बचपन ही में पिता फतेहचंद का स्वर्गवास हो गया । और इन्हीं को अपने घर का सारा कार्य्य भार उठाना पड़ा । इस प्रकार कालयापन करने हुए पाँच सन्तानों को छोड़ कर आप भी चल बसे । इन पाँच सन्तानों में सबसे बड़े गोपाल चंद जी थे । पिता की मृत्यु के समय इनकी अवस्था केवल ग्यारह वर्ष की थी । आपको भी इस छोटी अवस्था में घर का कार्य्य भार सम्हालना पड़ा किन्तु कुशाग्र बुद्धि होने के कारण इनको किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ । ये बहुत विद्वान, लोकप्रिय तथा धर्मनिष्ठ थे । इन्होंने छोटे बड़े लगभग चालीस ग्रन्थों की रचना की । जिसमें वाल्मीकि रामायण का पद्यानुवाद, जरासघ-बध महाकाव्य, दशावतार कथामृत, नहुष नाटक, गर्ग संहिता-भाषा आदि प्रसिद्ध हैं । कविता में ये अपना नाम 'गिरिधर दास' रखते थे । आपका विवाह बहुत घूम घास से हुआ था । तथा अन्त में आपको अपने स्वसुर की सम्पत्ति भी मिल गई थी । आपकी धर्म पत्नी जी का नाम पार्वती देवी था । आपके चार सन्ताने हुईं । मुकुन्दी बीबी, बाबू हरिश्चन्द्र, गोकुल चंद तथा गोविन्दी बीबी । मोहनी बीबी नाम की एक धर्मपत्नी और थी किन्तु उनसे कोई भी सन्तान न थी । योग्य पिता का पुत्र भी योग्य था । भारतेन्दु जी के पिता बहुत ही रईसाने ढंग से रहने वाले थे, जिनका प्रभाव भारतेन्दु जी पर प्रत्यक्ष पड़ा । बाबू गोपालचंद को बगीचे, तालाब, मकान आदि का बहुत शौक था । आपका स्वभाव शान्त तथा बहुत ही हँसमुख था । वह सदा साधु-भक्तों की सेवा में लगे रहते थे । वैष्णव धर्म के अनुयायी थे और पूजा में बाधा न पड़े, इस कारण घर से बाहर यात्रा आदि के लिए बहुत कम निकलते थे । बनारस के कमिश्नर गविन्स साहब आपको देवदूत ही मानते थे । "बाबू गोपाल चंद फरिश्ता हैं जो पंख काटकर स्वर्ग से पृथ्वी पर गिरा दिया गया" । इन्हीं के कारण काशी में होली तथा बुढ़ा-मंगल, बड़ी

धूमधाम से मनाया जाता था। जनता के विश्वास-पात्र तो ये थे ही दूसरी ओर गवर्नमेन्ट के भी बहुत विश्वासपात्रों में से थे। सन् सत्तावन के विद्रोह-विप्लव में इन्होंने गवर्नमेन्ट को सहायता दी थी तथा आर्मस् ऐक्ट के अनुसार इनको ४८ अस्त्र रखने की अनुमति मिली थी। ये बड़े विद्या प्रेमी तथा विद्वानों के अनुरागी थे। इनके पास अनेक अमूल्य ग्रंथों का सुन्दर संग्रह था। इनका “सरस्वती भवन” बहुत ख्याति प्राप्त पुस्तकालय था। इनके दरबार में ईश्वर, सरदार बाबा दीनदयालु गिरि सरीखे कवि रहते थे। ये उनका बड़ा सम्मान करते थे। इनका सबसे बड़ा दुर्गुण भंग बूटी छानना था, और इसी से इनको जलोदर का रोग हो गया था। केवल २७ वर्ष की अवस्था में आप अपने दो पुत्रों को छोड़कर स्वर्ग धाम सिधारे।

जीवन और व्यक्तित्व

भारतेन्दु बाबू का जन्म भाद्रपद शुक्ल ऋषि पंचमी सम्बत् १९०७ अर्थात् ९ सितम्बर सन् १८५० ई० को काशी नगरी में हुआ। आपको छोटी अवस्था में ही अपने पूज्य पिता जी से विद्वान तथा महाकवि होने का वरदान प्राप्त हुआ था। एक बार आप पिता जी के समीप बैठे थे, बलराम कथामृत की रचना के लिए पिता जी से आज्ञा माँगी, पिता जी ने बहुत ही स्नेह पूर्वक आज्ञा दे दी। इस पर बाबू जी ने तुरन्त यह दोहा बना कर सुनाया :—

लै व्योढा ठाढ़े भए श्री अनिरुद्ध सुजान ।

बाणासुर की सैन को हतन लगे भगवान ॥

बाबू गोपाल चन्द्र जी इसे सुन कर बहुत ही प्रसन्न हुए और इसे अपने ग्रन्थ में स्थान दिया। भारतेन्दु जी को प्रोत्साहन देते हुए उन्होंने कहा “तू मेरा नाम बढ़ाएगा”। इसी प्रकार “कच्छप कथामृत” के एक दोहे की व्याख्या भी आपने अपने ही ढंग पर की थी। “करन चहत जस चारु, कछु कछुआ भगवान को” में आपने ‘कछुक छुआ’ सन्धि भंग कर

के अर्थ लगाया था । इतने छोटे बालक की यह बातें बुद्धि-प्रखरता की द्योतक हैं । एक दिन पिता जी तर्पण कर रहे थे इस पर इन्होंने कहा कि “पानी में पानी डालने से क्या लाभ ?” पिता जी ने कहा मालुम पड़ता है तू मेरा “कुल बोरेंगा” । इन सब बातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतेन्दु जी कितने जिज्ञासु थे ! आगे चल कर आपके पिता की भविष्य वाणियाँ सत्य हुईं । एक ओर तो आप देश-सेवक हिन्दी भाषा के उन्नायक हुए तथा दूसरी ओर घर का धन, ऐश्वर्य, मान आदि सभी कुछ नष्ट कर दिया । “नाम बढ़ाने” का आशीर्वाद तथा “कुल बोरने” का अभिशाप दोनों ही सार्थक हुए ।

नौ वर्ष की अवस्था में पण्डित घनश्याम दास गौड़ के हाथों इनका यज्ञोपवीत हुआ । उस समय बहुत ही शोक पूर्ण घटना हो गई । इधर जलसे और ज्योनार की तैयारियाँ हो रही थीं उधर पिता जी के प्राण निकल रहे थे । भोजन की जो सामग्री ब्राह्मणों और इष्ट मित्रों के लिए तैयार की गई थी, सब कंगालों और साधुओं को बाँट दी गई । बहुत ही छोटी अवस्था में आपका पठन-पाठन प्रारम्भ हुआ । पंडित ईश्वरी दत्त तिवारी जी ने “राम गति देहु सुमति” से आपका विद्यारम्भ कराया । मौलवी ताजअली ने फारसी तथा नन्द किशोर जी ने अंग्रेजी पढ़ाना प्रारम्भ किया । तदुपरान्त राजा शिवप्रसाद जी के स्कूल में आपने कुछ दिनों तक विद्याध्ययन किया ।

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जिन आल्पायु बच्चों के माता-पिता कम ही आयु में स्वर्गवासी हो जाते हैं वह कुशाग्र बुद्धि निकलते हैं । यही बात बाबू हरिश्चन्द्र जी पर भी घटित हुई । इसका कारण प्रथम तो यह है कि बच्चों को लाङ्घ्यार नहीं मिल पाता । इससे प्रारम्भ ही से गम्भीरता आ जाती है । दूसरे बच्चों को थोड़ी आयु से अपना भार अपने कंधों उठाना पड़ता है । अस्तु-पिता की मृत्यु के पश्चात् आप क्वीन्स कालेज में भरती हुए और अध्ययन करने लगे । किन्तु स्वच्छन्द प्रकृति होने के कारण न तो यह घर पर ही किसी की सुनते

थे और न स्कूल में ही मन लगा कर पढ़ते थे। यही कारण था कि आपकी शिक्षा अधूरी रह गई। किन्तु आपकी ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा बहुत विलक्षण थी। स्मरण शक्ति का तो कुछ कहना ही नहीं, एक बार का पढ़ा हुआ पाठ ज्यों का त्यों कठाय हो जाता था। परीक्षा में आप सदा उत्तीर्ण हुए। कुल तीन वर्ष संस्कृत तथा अंग्रेजी की शिक्षा चल पाई। भारतेन्दु जी इसी विद्यार्थी जीवन से ताम्बूल के बहुत बड़े उपासक बन गये थे।

छात्रावस्था से ही आप पद्य रचना करने लगे थे। परन्तु उस समय अधिकतर श्रृङ्गार रस की ही ओर आपकी विशेष रुचि थी। स० १९२० के अगहन मास में भारतेन्दु जी का ब्याह शिवाले के रईस लाला गुलाब राय की सुपुत्री श्रीमती मन्नो देवी से बड़े समारोह के साथ हुआ। भारतेन्दु जी प्रायः बीस पच्चीस भाषाएँ जानते थे। यह भाषाएँ अधिकतर देशाटन काल ही में सीखी गईं। कुछ तो केवल सुन सुनाकर तथा कुछ का सम्यक् अध्ययन करके आपने उन्हें सीखा। भारतेन्दु जी का स्वभाव बचपन से ही हठी तथा चंचल था। स० १९२२ वि० में आप सपरिवार जगन्नाथ जी गए। इनके शिक्षा-क्रम की प्रधान बाधा यह यात्रा ही हुई। यात्रा के लिए चलते समय एक महापुरुष जबरदस्ती दो अशफियाँ भेंट दे गए और कह गए कि मार्ग में काम आएँगी। इसका विशेष परिणाम यह हुआ कि भारतेन्दु जी आगे चल कर ऋण लेने के आदी हो गए। इसका भेदातब खुला जब आगे उन महाशय ने सूद दर सूद लगाकर उन दो अशफियों के बदले दस पन्द्रह हजार की एक बड़ी हवेली पर कब्जा कर लिया।

जगन्नाथ जी के दर्शन करते समय आपने सिंहासन पर भैरव की मूर्ति देखी जिसे इन्होंने अप्रमाणिक सिद्ध किया और अन्त में वह मूर्ति वहाँ से हटवा कर ही मानें। इस पर किन्हीं सज्जन ने “तहकीकात पुरी” नामक पुस्तक लिखी जिसका उत्तर भारतेन्दु जी ने “तहकीकात पुरी की तहकीकात” लिख कर दिया। जगदीश यात्रा से लौट कर आप बुलंदशहर

गए वहाँ से अपने भतीजे श्री कृष्ण को एक पत्र लिखा जिसको पढ़ कर विदित होता है कि भारतेन्दु जी कितने भावुक तथा कोमल हृदय थे । बुलदशहर से फिर :—

“प्रथम गये चरणाद्रि कान्हपुर को पगधारे
बहुरि लखनऊ होय सहारनपूर सिधारे
तँह ममूरी होइ जाइ हरिद्वार नहाए
फेर गए लाहौर सु पुनि अम्बर सर आए
दिल्ली ब्रज बसि आगरा देखत पहुँचे आए घर
तैतीस दिवस मे यातरा यह कीन्हीं हरिचद वर ॥†

लगभग ६ वर्ष के उपरान्त आप पुष्कर यात्रा के लिए अजमेर गए और फिर हिन्दी वर्धिनी सभा द्वारा आमन्त्रित हो कर प्रयाग गए । हिन्दी वर्धिनी के अधिवेशन मे ९८ दोहों का पद्य बद्ध व्याख्यान दिया । इसमें स्वदेश-प्रेम, स्त्री-शिक्षा तथा ऐक्य सम्बन्धी विषय थे । स० १९३६ में आपने अयोध्या को प्रस्थान किया और रामनवमी वहीं मनाई । वहाँ से हरैय्या बाजार बस्ती और मेहदावल गोरखपुर होते हुए काशी वापस आ गए । इन सबका वर्णन हरिश्चन्द्र चंद्रिका मे प्रकाशित हुआ था । वर्णन बहुत ही विनोद पूर्ण तथा सजीव है । स० १९३ में महाराज काशीराज के साथ वैद्यनाथ गए । इसका वर्णन भी बहुत रोचक है । यह भी हरिश्चन्द्र चंद्रिका में प्रकाशित हुआ था । स० १९३९ वि० में आप उदयपुर गए । वहाँ की बैलगाड़ी यात्रा का वर्णन भी बड़े रोचक ढंग से एक कविता मे किया है :—

“हिलत झुलत गाड़ी आवे ।

झुलत सिर टुटत रीढ़ कमर झोका खावे ॥” † इत्यादि

उदयपुर में मोहन लाल के यहाँ ठहरे और वहीं आपने बहुत सी समस्या पूर्तियाँ भी कीं ।

आकृति तथा स्वभाव

भारतेन्दु जी की आकृति के विषय में श्री ब्रजरत्न दास जी लिखते हैं “भारतेन्दु जी कद के कुछ लम्बे थे और शरीर से एकहरे थे, न अत्यन्त कृश और न मोटे ही। आँखें कुछ छोटी और घँसी हुई सी थी तथा नाक बहुत सुडौल थी, कान कुछ बड़े थे, जिन पर घुँघराले बालों की लटें लटकती रहती थीं। ऊँचा ललाट इनके भाग्य का द्योतक था। इनका रंग साँवलापन लिए हुए था। शरीर की कुल बनावट सुडौल थी। इनके इस शारीरिक सौन्दर्य पूर्ण मूर्ति का इनसे मिलने वालों के हृदय पर उतना ही प्रभाव होता था जितना इनके मानसिक सौन्दर्य का। इनके समय के कई वृद्धजन कहते हैं कि उनको उस समय लोग ‘कलयुग के कंधैया’ कहा करते थे।”†

आगे चलकर पं० अम्बिका दत्त व्यास जी के “विहारी विहार” में दिए हुए स्वभाव का वर्णन करते हुए कहते हैं, “दूर से लोग इनकी मधुर कविता सुन आकृष्ट होते थे और समीप आ मधुर श्यामसुन्दर घुँघरारे बाल काली मधुर मूर्ति देख कर बलिहारी होते थे और वार्तालाप में इनके मधुर भाषण, नम्रता और शिष्ट व्यवहार से वशम्बद हो जाते थे”। इसके अतिरिक्त चित्रों से भी भारतेन्दु जी के व्यक्तित्व और वेशभूषा का परिचय मिलता है जिससे उक्त उदाहरणों की उपयुक्तता प्रमाणित होती है। आपकी उदारता तथा सहृदयता का परिचय आपकी बाह्य आकृति से बहुत कुछ मिलता है। आप एक सफल नाटककार तथा अभिनेता भी थे।

शील तथा दान

भारतेन्दु जी स्वभाव से ही भावुक तथा सरल थे और प्रायः लोगों

की झूठी तथा मक्कारी की बातों में आ जाया करते थे । सहानुभूति पूर्ण व्यवहार इनका सबसे बड़ा गुण था । ये दुःख सुख में समान, धैर्यवान तथा सतोषी थे । इनके नाटको के अनेक पात्र इन गुणों की झलक दिखलाते हैं । अभिमान तो इन्हें छू नहीं गया था किन्तु प्रतिद्वन्दिता में ये घोर अभिमानी थे । अपनी धनाढ्यता कभी भी किसी पर बिदित नहीं होने देते थे और गुप्तदान किया करते थे । काव्य गुणों का ये अपने को अधिकारी समझते थे और इस विषय में जिज्ञासुओं की शका निवारण सदैव किया करते थे । लोग इसे अभिमान कह सकते हैं किन्तु इसे अभिमान न कह कर उदारता पूर्वक विद्यादान करना अधिक कहा जा सकता है । कितनी भी हानि हो जाने पर भी आप क्रोध नहीं करते थे वरन् दूसरों के क्रोध का भी निवारण करने का प्रयत्न करते थे । निर्धनों की शाल, दुशाले, धन आदि से सदैव सहायता किया करते थे । आपके उपरोक्त गुण आपकी कन्या में भी समुचित मात्रा में विद्यमान थे ।

साहित्य-सेवकों को भारतेन्दु जी से सदा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ । न जाने कितनों को इन्होंने व्यापार में लगाया । कितनों को नवीन आविष्कृत वस्तुओं में भी व्यापार करने को प्रोत्साहित किया । प्रेस, फोटोग्राफी आदि से आपको प्रेम था इसमें लोगों को सहायता रूप में व्यापार करने को प्रोत्साहित किया था । आपका दान तथा शील उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है । आपने अपने परिचय के लिए यह छन्द बनाया था जिससे आपको समझने में सुमगता होगी ।

सेवक गुनीजन के चाकर चतुर के हैं
 कविन के मीत चित हित गुनगानी के
 सीधेन सों सीधे, महा बांके हम बाकेंन सों
 हरीचन्द नगद दमाद अभिमानी के
 चाहिबे की चाह, काहू की न परवाह,

नेही नेह के दिवाने सदा सूरत निवानी के
 सरबस रसिक के, सुदास दास प्रेमिन के
 सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधारानी के ॥

हरिश्चन्द्र ऐण्ड ब्रदर्स के नाम से आप स्वयं व्यापार क्षेत्र में उतरे थे। हिन्दी साहित्य तथा भाषा की उन्नति के लिए आपका कोप सदैव खुला रहता था। बालकों को प्रस्कार तथा स्कूलों तथा विद्यालयों को भी पर्याप्त सहायता करते थे।

भारतेन्दु जी सत्य प्रिय व्यक्ति थे। सत्य पथ पर चलना उनके जीवन का एक प्रधान लक्ष्य था। आपने अपने 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में स्वयं लिखा है :—

“चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार,
 पै दृढ़ श्री हरिचन्द को, टरै न सत्य विचार।”

इस सिद्धान्त को इन्होंने अपने जीवन में शक्ति भर निभाया। धन तथा सम्मान का लोभ इनको कभी इस सिद्धान्त से डिगा नहीं सका। जीवन की गम्भीरता को ये सदैव अपनी परिहास-प्रियता से छिपाए रहते थे। दुःख की हँस खेल कर उपेक्षा कर देना इनके जीवन की एक विशेषता थी। गंभीर से गंभीर परिस्थिति को ये परिहास से निभा लेते थे। एप्रिल फूल्स डे आदि की कहाँनियाँ इनकी परिहास-प्रियता के अच्छे उदाहरण हैं। सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि सभी अवसरों पर प्रसन्न रहते थे तथा कभी परिहास-व्यग आदि से बाज नहीं आते थे। होली आदि त्योहारों के उत्सव बड़ी धूम धाम से मनाते थे।

समदर्शी उदार भारतेन्दु गुणियों के कल्पवृक्ष थे। काव्य तथा कला अनन्य प्रेमी थे। विद्या व्यसन का तो कहना ही क्या? समाज में आपकी गर्वोक्ति “सब सज्जन के मान को कारन इक हरिचंद” प्रसिद्ध थी। उस समय के प्रतिष्ठित लोगों का आदर यह सदैव धन, सेवा शुश्रूषा आदि सम्मान से किया करते थे। हिन्दी साहित्य ने भारतेन्दु जी

की इन सहायताओं से बहुत लाभ उठाया क्योंकि इनके सम्पर्क में आकर लोगों का ध्यान साहित्य तथा भाषा की ओर गया ।

यह सब होते हुए भी आपके स्वभाव में रुचि वैचित्र्य था । कापियों किताबों में ‘हरिश्चन्द्र को न भूलिए’ लिखा करते थे । पत्रों के लिखने के लिए भिन्न भिन्न प्रकार के रंगों के कागज का प्रयोग करते थे जो भिन्न भिन्न दिनों को सूचित करते थे । ‘उत्तर शीघ्र’ तथा ‘जरूरी’ आदि छपी हुई चिटे रहती थी जो पत्रों पर चिपका दी जाती थीं । तात्पर्य यह कि इस प्रकार की मनोरञ्जक या चमत्कार पूर्ण बातों से आप प्रभावित थे और यह चमत्कार आप अपने काव्य-जीवन तथा अन्य स्थलों पर प्रयोग किया करते थे । आप लगभग बीस पच्चीस भाषाओं के ज्ञाता थे । इनमें से कई लिपियों को बहुत सुन्दर अक्षरों में लिख सकते थे । हिन्दी, अंग्रेजी, फारसी गुजराती, बँगला, महाजनी पर आप का विशेष अधिकार था । हिन्दी लिखने की गति तीव्र थी । अंग्रेजी तथा उर्दू पर अधिकार होने के कारण बहुत से पारितोषिक भी प्राप्त किए थे । आपको ‘राइटिंग मशीन’ की उपाधि भी मिली थी । पठन-पाठन की सामग्री सदा इनके साथ रहती थी । बुद्धि प्रखरता तथा स्मरण शक्ति के कारण आशु कवित्व-शक्ति इनमें प्रचुर मात्रा में थी । मिनटों में समस्या पूर्तियाँ आदि किया करते थे । समस्या पूर्ति को किसी के पुरानी कह देने पर उसी समस्या पर पांच छै पुर्तियाँ करके सुना देते थे । बड़े बड़े विद्वान तथा आशु कवि आप का लोहा मानते थे । केवल अट्ठारह वर्ष की अवस्था में ‘तू वृथा मन क्यों अभिलाष करै’ तथा अन्य समस्याओं की पूर्तियाँ की थीं । ‘अंधेर नगरी’ तथा ‘बलिया का लेक्चर’ (हिन्दी व्याख्यान) केवल एक एक दिन में तय्यार किए गए थे । अनेक पद तथा गीत इसी अवस्था में आपने लिखे थे ।

उदाहरणार्थ:-

पछितात गुजरिया घर में खरी.....

बैठत उठत सेज पर भामिनि

पिया बिना मोरी सूनी सेजरिया । आदि [वर्षा दिनोद]
 यो तो पूर्ववर्ती कवियों के भाव परवर्ती कवियों में आ ही जाते हैं किन्तु
 उन भावों का नवीन सगठन ही सत्कवि की विशेषता है । भारतेन्दु जी
 इस शैली के पूर्ण अविकारी थे । एक बार इनके चचा की कविता के
 भाव इनकी कविता में आ गए । विदित होने पर अपने पद्य को नष्ट कर
 दिया । सामाजिक, धार्मिक एवम् राजनीतिक परिस्थितियों के कारण
 समाज सुधार पर उनकी दृष्टि विशेष बनी रही, इस लक्ष्य को आपने
 जीवन भर निभाया था । बल्लभीय वैष्णव सम्प्रदाय में इनका पूर्ण
 विश्वास एवम् आस्था थी । यद्यपि समाज में पुराने विचार अंग्रेजी राज्य
 के कारण उखड़ने लगे थे और नई विचार धारा स्थापित हो रही थी ,
 किन्तु भारतेन्दु जी मध्यम मार्ग पर चलते थे । वे पुराने विचारों का
 समर्थन करते हुए नवीन विचार धारा के पोषक थे । सत्य के पुजारी
 भारतेन्दु जी समाज के बिगड़े हुये रीति-रिवाजों को सभालने में लगे रहते
 थे । उपदेश तथा शिक्षा पूर्ण व्याख्यानों में आप नई बातों का भी समर्थन
 करते थे । वर्ण व्यवस्था में आपको विश्वास था । परन्तु परम्परागत धर्म
 को समयानुसार बदलने के पक्षपाती थे । धर्म शास्त्र में सत्य का ही
 विशेष महत्व आप चाहते थे । अछूतोंद्वारा के भी आप किसी हद तक
 समर्थक थे । बाल विवाह, विधवा विवाह के पक्षपाती आप नहीं थे ।
 स्त्री-शिक्षा, ऐक्य, हिन्दी राष्ट्र भाषा के प्रचार आदि कार्यों में आप
 सदा सलग्न रहते थे । अपनी सुपुत्री को आपने अच्छी शिक्षा दी थी ।
 स्त्रियों के अश्लील गीतों का विरोध करते थे । इसी भावना से भजन
 तथा गेय पदों की रचना आपने की है । भारतवासियों के आलस्य,
 अहंकार, ईर्ष्या-द्वेष, मुकदमेबाजी आदि दुर्गुणों पर सुधारेक्षा से तीखे-
 व्यंग्य किया करते थे । यह सब कार्य देश, समाज, जाति सेवा से प्रेरित होकर
 किए जाते थे । शिक्षा प्रचार के लिए भारतेन्दु जी ने अंगरेजी स्कूल भी
 खुलवाए । चौखम्बा काशी में हरिश्चन्द्र हाई स्कूल जो अब इंटरमीजिएट
 हो गया है आज भी विद्यमान है । 'न तो बिना मातृभाषा के भारत का

छट्टार हो सकता है और न अन्य भाषाओं के बिना भारतीयों का ज्ञान क्षेत्र ही विस्तृत हो सकता है' ये उनके विचार थे। 'भारत दूर्दशा' आदि नाटको से इनके देशोद्धार के प्रयत्न का प्रारम्भ हुआ था। इन्होंने केवल सत्रह वर्ष की अवस्था में चौखम्भा स्कूल को स्थापित करवाया था जिसमें अधिकांश बालक निःशुल्क शिक्षा पाते थे। अनाथ बालकों को विद्या तथा धन आदि का दान भी दिया करते थे। आगे चलकर यही स्कूल मिडिल स्कूल और अन्त में हरिश्चन्द्र हाई स्कूल हो गया जो आज इंटरमीडिएट के रूप में वर्तमान है।

भारतेन्दु जी ने देश, भाषा तथा जाति सेवा के लिए अनेक समाचार पत्रों का प्रकाशन किया था। बनारस गजट उन दिनों उर्दू शब्दों से भरा रहता था। इससे हिन्दी भाषा का भविष्य अधिकारमय था। यह जानकर भारतेन्दु जी ने सन् १८६९ ई० में "कवि वचन सुधा" नाम की पत्रिका प्रकाशित करवाई थी। यह शीघ्र ही मासिक से पाक्षिक और अन्त में साप्ताहिक हो गई। इसमें पहले प्राचीन काव्य तथा अन्त में गद्य निबन्ध आदि भी प्रकाशित होते थे। अंगरेजी के लेख भी प्रकाशित किए जाते थे। पं० राम शंकर जी व्यास ने हरिश्चन्द्र जी को भारतेन्दु की उपाधि से विभूषित किया था। क्रमशः भारतेन्दु जी का नाता 'कवि वचन सुधा' से टूटता गया और यह पत्रिका बन्द हो गई। कुछ दिन पश्चात् हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका, बाला बोधिनी आदि पत्रिकाएँ आपने निकालीं तथा अन्य साहित्यिकों को भी पत्र निकालने के लिए प्रोत्साहित किया। 'काशी-पत्रि' आर्य्य मित्रिका, मित्र-विलास, भारत-मित्र हिन्दी प्रदीप आदि पत्रों का प्रकाशन आपके ही प्रोत्साहन तथा उद्योग से हुआ था। सं० १९२७ में भारतेन्दु जी ने 'कविता वर्धिनी-सभा' स्थापित की जिसकी बैठक कभी तो राम कटोरा बाग में तथा कभी आपके घर पर हुआ करती थी। उस समय के प्रसिद्ध कवि सरदार, सेवक, दीन दयाल गिरि, मन्नालाल 'द्विज', श्री गीड़ "दत्त" नारायण, हनुमान आदि तथा अन्य अनेक प्रतिष्ठित कविगण इसमें भाग लेते थे।

सं० १९३० में पेनी रीडिंग क्लब भी स्थापित हुआ था इसमें गम्भीर विषय के निबन्धों का पठन-पाठन होता था । साहित्यिक मनोरंजन के साथ साहित्य सेवा ही क्लब का ध्येय था । हम पहले ही देख चुके हैं कि भारतेन्दु जी का झुकाव धर्म की ओर विशेष था उसी के उपलक्ष में सं० १९३० में एक “ तदीय समाज ” का भी जन्म आपके द्वारा हुआ । जिसका परम उद्देश्य सत्य, धर्म तथा ईश्वरोपासना का प्रचार था । गो-वध, मदिरापान तथा इसी प्रकार के अन्य विषयों पर इसमें विचार किया जाता था । विचारों के साथ अनुचित बातों का बहिष्कार अथवा सद्गुणों का प्रचार सुचारु रूप से किया जाता था । इस विषय की पुस्तकें निःशुल्क वितरित की जाती थी । इस सभा के सदस्य होने के लिए कुछ विशेष नियंत्रण थे, बिना उनके सदस्य होना असम्भव था । सामाजिक सुधार के लिए भी सं० १९२४ में “यंग मेन्स एसोसियेशन” तथा “डिबेटिंग क्लब” आदि स्थापित किये गये थे । हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने का भारतेन्दु जी ने बहुत प्रयत्न तथा आंदोलन किया था । परन्तु एक चना भाड़ नहीं फोड़ सकता । सं० १९२४ में आपने होम्यो-पैथिक का एक दातव्य चिकित्सालय भी खुलवाया था । इन सब बातों से स्पष्ट हो जाता है कि आप समाज सम्बन्धी कार्यों में ऐसे व्यस्त थे कि पूर्वजों की बनाई हुई जायदाद को सँभालने का आपको समय ही न था । धन का अधिक भाग समाज सुधार, विद्या-प्रचार आदि कार्यों में व्यय होता चला जाता था । साहित्य सेवा, दुखियों की सहायता, देशोप-कारक कार्य तथा अन्त में आनन्द और विहार इन्हीं में पूर्वजों की सारी धन राशि समाप्त होती चली जा रही थी । संगीत, चित्रकारी, पुस्तक संग्रह, अद्भुत पदार्थों का संकलन, इत्र, उत्तम कपड़े, पुरातत्व की वस्तुएँ, एलबम आदि अद्भुत वस्तुओं के संग्रह में आपका विशेष प्रेम था । और इनके लिए धन का उपयोग निस्सकोच होकर करते थे । आपकी विमाता को इनकी यह सब बातें नहीं रुचती थीं । परिणाम स्वरूप भाइयों में बटवारा हो गया । अब भारतेन्दु जी का स्वर्च

अधिक तथा आमदनी कम होने से सम्पत्ति का नाश तीव्र गति से होने लगा । क्रमशः उन्हें उधार तक लेने की नौबत आने लगी ।

आपत्तियाँ कभी अकेली नहीं आती । धन नाश के साथ-साथ परिस्थितियों के कारण भारत सरकार भी भारतेन्दु जी से रुष्ट हो गई । आँनरेरी मैजिस्ट्रेटों के बीच में आपकी अवस्था सबसे कम थी । किन्तु कार्य्य सर्वोत्तम आप ही का था जिससे आपके साथी आपसे द्वेष रखने लगे । अपनी बुद्धि प्रखरता के कारण आप म्युनिसिपल कमिश्नर भी नियुक्त हुये थे । इनकी यह पद वृद्धि भी द्वेषियों से देखी न गई । संस्कृत परीक्षाओं के परीक्षक, पत्र पत्रिकाओं के जन्मदाता, समाज सुधारक, उदार हृदय आदि गुणों से विभूषित होने के कारण लोगों ने आप से द्वेष के कारण व्यवहार बिगाड़ना प्रारम्भ किया ।

‘मसिया’, भुतही इमलो का कनकौआ’ आदि लेखों में व्यंग्य का पुट अधिक मात्रा में था, जिससे चुगलखोरों को एक अच्छा अवसर हाथ लगा । आप पर राज्यद्रोह का लाँछन लगाया गया । इनके पत्रों को सरकारी सहायता बंद हो गई । किन्तु साँच को आँच क्या ? भारतेन्दु जी ने सरकारी काम छोड़ दिये और केवल हिन्दी भाषा की उन्नति में दत्त चित्त हो गये ।

चोर की चोरी कभी न कभी अवश्य खुलती है । जिन दुष्ट लोगों ने भारतेन्दु जी के खिलाफ अधिकारियों के कान भरे थे आगे चल कर उनकी सब बातें स्पष्ट हो गईं । सरकारी कार्यों से इस्तीफा देने के बाद उनके गुण सभी को याद आने लगे । बा० ईश्वरी नारायण सिंह तथा काश्मीर नरेश श्री रणवीर सिंह जी ने आपका बहुत सम्मान किया तथा उपरोक्त पदों को फिर से ग्रहण करने का अनुरोध किया किन्तु भारतेन्दु जी ने “जिसे छोड़ दिया उसे छोड़ दिया ।”

बायसराय लार्ड लिटन ने भारतेन्दु जी को उनकी योग्यता पर एक पदक प्रदान किया था । इसी प्रकार से डाइब साहब ने तथा अन्य महानुभावों ने अन्यायपूर्ण व्यवहार के लिये पश्चाताप भी किया । आपकी

प्रतिभा से सभी लोग प्रभावित थे। उर्दू को एक उखड़ी हुई तथा अशुद्ध भाषा सिद्ध करने के हेतु उन्होंने एकबार एक शब्द को दो सौ बार विभिन्न अर्थों में पढ़ा था। इस प्रकार अपूर्व प्रतिभा-सम्पन्न, विद्वान्, कवि, भक्त, समाजसुधारक आदि गुणों से विभूषित आपने जनता के हृदयों में घर कर लिया था। मेवाड़ के महाराणा सज्जन सिंह आप पर कृपालु थे। लोक प्रियता आपको समाज के सभी क्षेत्रों में प्राप्त थी। महानुभाव आप पर सब कुछ न्योछावर करने को तत्पर रहते थे। सन् १८८० ई० में २७ वीं सितम्बर के 'सार सुधा निधि' पत्र में पं० रामशंकर व्यास ने इनको 'भारतेन्दु' की पदवी देने का प्रस्ताव रक्खा था। गुणग्राहक जन-समाज ने एकमत होकर सहर्ष आपको यह पदवी प्रदान की।

पारिवारिक जीवन में भारतेन्दु जी की विमाता से बिल्कुल नहीं पटती थी। भाई गोकुलचन्द्र से इनका सम्पत्ति-विभाजन भी हो चुका था। घर में आपका सम्मान "अपव्ययी" विशेषण से होता था। जिस सन्यासी ने अपना सारा तन, मन, धन, देश, समाज, जाति तथा भाषा सेवा में लगा दिया, वह अपव्ययी था !! और वह लोग जो एक पैसा तक भी भिखारी को देना मूर्खता समझते थे, लोक व्यवहार पटु तथा संचयशील थे। अस्तु भारतेन्दु जी पर यह भी अभियोग था कि वह विलासी तथा व्यभिचारी थे। निस्संदेह वह रसिक थे परन्तु उनको व्यभिचारी कहना असंगत है। संभव है कि परिस्थितियों अथवा पूर्वजों के प्रभाव के कारण मनोविनोद के लिये वह कभी-कभी लोक मर्यादा का उल्लंघन कर जाते हो किन्तु इसे विराट रूप देकर तिल का ताड़ बनाना अनुचित है। कवि, कला प्रेमी, सौन्दर्योपासक होने के कारण सम्भव है इस दिशा में वे कुछ असयत प्रतीत होते हों।

गृह कलह उनके जीवन की सबसे बड़ी अशान्ति थी। इससे शान्ति पाने के लिये भी वे अपने को राग रंग में डुबो देना चाहते थे। समाज, सम्बन्धियों तथा स्वार्थी मित्रों की हृदय हीनता, संकीर्णता, मूर्खता आदि की चिन्ता सदा आपको व्यथित किया करती थी। आप सदा

इन्ही समस्याओं के निराकरण में व्यस्त रहा करते थे । फिर भी ऊपर से आप हमेशा ही हँसमुख दिखलाई पड़ते थे । इतने पर भी समाज ने आपके प्रति कठोर वाक्य वाणों का प्रयोग किया । किन्तु कुछ भी हो उनकी लगन, त्याग, कर्मण्यता आदि सदा ही सराहनीय रहेगी ।

भारतेन्दु जी ऋण के भार से दब गये । और इसी कारण उन्हें ऐसे भी कार्य करने पड़े जिनको वह स्वयम् करना नहीं चाहते थे । उदयपुर जाने में आप रोग-ग्रस्त हो गए । सारा शरीर चिन्ताओं तथा शारीरिक कष्टों से चूर हो गया । हैजा हुआ किन्तु इस बार ईश्वर ने रक्षा की । श्वास, खासी तथा ज्वर ने आपको घर दबाया । कुछ अच्छे होने पर आप फिर काय्य में व्यस्त हो गये । परिणाम यह हुआ कि रोगी शरीर और रोगी हो गया और माघ कृष्ण ६ सं० १९४१ वि० (६ जनवरी १८८५) को भारतेन्दु जी की कहानी ही 'प्यारे हरिचंद की कहानी' मात्र रह गयी !! इसी अशुभ दिन आपने हिन्दू-हिन्दी को निर्धन कर दिया ।

आपकी एक पुत्री तथा पत्नी ही इस अंधकारमय संसार में आपका नाम रोने को रह गईं । भारतेन्दु जी का वंश आज भी चल रहा है । दौहित्र श्री ब्रजरत्नदास जी भारतेन्दु जी की स्मृति रूप में हिन्दी की सेवा में दत्तचित्त हैं । सन् १९२६ में भारतेन्दु जी की पत्नी भी स्वर्गवासिनी हुईं ।

भारतेन्दु जी पर किए गए अक्षेपों का शिवनन्दन सहाय तथा श्री ब्रजरत्नदास जी ने निराकरण किया है । और अपने कथन की पुष्टि में भारतेन्दु जी के मित्रों का उल्लेख किया है । किसी ने भी भारतेन्दु जी के चरित्र को पतित नहीं बतलाया । मनुष्य का आचरण उसके मित्रों से भी जाँचा जा सकता है । निस्संदेह भारतेन्दु जी रसिक थे और उनके मित्र भी ऐसे ही थे । भारतेन्दु जी के मित्रों में ईश्वरचंद विद्यासागर, दयावान, विद्या प्रेमी व्यक्ति थे । राजा राजेन्द्रलाल बंगाल के बहुत बड़े विद्वान् थे । राजा लक्ष्मणसिंह फ्रेडरिक पिन कर्ट,

केशवचंद सेन, बंकिम चटर्जी, पण्डित बद्रीनारायण चौधरी, प्रेमधन महाराज बाबू रामदीन सिंह, पं० प्रताप नारायण मिश्र, ठाकुर जग-मोहनसिंह, पं० अम्बिकादत्त व्यास, पं० सुधाकर द्विवेदी, पं० रामशंकर व्यास, बाबू साहब प्रसाद, रामबहादुर लक्ष्मीशंकर मिश्र और राजा खड्ग बहादुर मल्ल आदि सभी विद्या प्रेमी, शुद्ध आचरण वाले, प्रसिद्ध व्यक्ति आपके मित्र थे। फिर यह कैसे विश्वास किया जाए कि भारतेन्दु जी व्यभिचारी तथा विलासी थे। रसिकता और चीज है किन्तु विलासिता का अर्थ दूसरा ही है।

भारतेन्दु जी जिज्ञासु व्यक्ति थे। वे छोटे बड़े सभी से ज्ञान प्राप्त करने को प्रस्तुत रहते थे। सत्पुरुषों के गुणों के साथ वे दुर्जनो के चरित्र से भी भलाई खोज कर ग्रहण कर लेते थे। देश की सहायता तो आप करते ही थे। एक बार फ्रांस की अनाथ स्त्रियों के लिए भी चन्दा इकट्ठा करके भेजा था। कहा जाता है कि एक बार भारतेन्दु जी से एक अनहोनी घटना हो गई। आप कमिश्नर साहब से मिलने गये। वहाँ एक घड़ी मेज पर से उठा कर अपनी जेब में रख ली। फाटक पर अचानक उसका अलार्म बज उठा। नौकरो के पकड़ने पर कमिश्नर साहब ने नौकरों को डाँट कर कहा कि मैंने स्वयम् ही यह घड़ी डन्हे भेट की है। हो सकता है अपव्ययी भारतेन्दु जी को किसी की सहायता के लिये ही ऐसा करना पड़ा हो। इसके अतिरिक्त कभी इस प्रकार की दूसरी घटना भारतेन्दु जी के विषय में नहीं सुनी गई।

उपसंहार स्वरूप हम कह सकते हैं कि भारतेन्दु जी एक महान व्यक्ति थे। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उनका उद्देश्य लोक, समाज, देश तथा भाषा की सेवा था। तन-मन-धन आपने इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति में लगा दिया। प्रत्येक क्षेत्र में हम उनकी तेजस्विता, रसिकता, सरलता, सहनशीलता तथा संलग्नता के दर्शन करते हैं। मनुष्यत्व, सत्यप्रियता, शील, दान आदि के कारण वह हिन्दी भाषा और साहित्य के ही नहीं बरन् हिन्दू जाति के भी एक रत्न कहे जा सकते हैं।

रचना परिचय

प्रथम अध्याय में भारतेन्दु काल की विभिन्न परिस्थितियों का परिचय हम दे चुके हैं। सामाजिक धार्मिक एवम् राजनीतिक अशान्ति के कारण साहित्यिक परिस्थितियों में भी परिवर्तन होने लगे। ब्रिटिश साम्राज्य के दृढ़ हो जाने से भारत में पाश्चात्य सभ्यता दिनों दिन उन्नति की ओर अग्रसर हो रही थी। भारतेन्दु जी इस विदेशी प्रभाव से देश को बचाने के लिए कटिबद्ध हुए। उनका विश्वास था कि भारत की अशिक्षा ही इन सब का मूल कारण है। अतएव सर्वप्रथम उसी के सुधार की ओर उनका ध्यान गया। उन्होंने हिन्दी-प्रचार, शिक्षा-प्रसार, अशिक्षा-निवारण तथा अन्य समाज सुधारों को अपना ध्येय बनाया और जीवन भर इन्हीं कार्यों में व्यस्त रहे। हिन्दी साहित्य उस समय बहुत कुछ एकांगी था। ब्रजभाषा, बुन्देलखण्डी, मैथिली आदि प्रान्तीय भाषाओं के ग्रन्थ ही अधिकतर उपलब्ध थे। भारतेन्दु जी ने काव्य में ब्रजभाषा को अपनाया और खड़ी बोली का परिमार्जन तथा प्रचार करना आरम्भ किया। नाटकों की उस समय कमी थी। कुछ अनुवादित नाटकों की छोड़ कर उनका नितान्त अभाव था। भारतेन्दु जी ने नाटक की ओर विशेष ध्यान दिया, साथ ही साथ काव्य, इतिहास, समालोचना, उपन्यास आदि सभी विषयों के ग्रन्थ लिखने प्रारम्भ किये। अपनी शैली में हास्य व्यंग्य का समावेश करके देश, समाज, भाषा, साहित्य का सुधार बड़े आकर्षक ढंग से किया। भारत की स्वतन्त्रता

का प्रश्न ये अशिक्षा दूर करके हल करना चाहते थे। इन्हीं कारणों से भारतेन्दु जी ने साहित्य क्षेत्र में नाटक तथा काव्य पर विशेष जोर दिया, क्योंकि प्रचार के लिए यही सर्वश्रेष्ठ साधन है। भारत की भिन्न भिन्न परिस्थितियों से उनको प्रेरणा मिली थी। रीति की प्रचलित प्रणाली तथा भक्ति के प्रभाव के कारण वह प्राचीन शैली के काव्य को न छोड़ सके। साथ ही नवीन जागृति तथा आंदोलनों के कारण नवीन धारा की काव्य रचना भी उन्होंने प्रारम्भ की। अतएव प्रेरणाओं का ग्रहण उन्होंने राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थितियों से किया जो उस समय चल रही थी और जिनका वर्णन प्रथम अध्याय में हो चुका है। सर्व प्रथम भारतेन्दु जी नाटक क्षेत्र में उतरे। यो तो वाल्यावस्था से ही आप काव्य की ओर आकर्षित थे किन्तु क्रमवद्ध साहित्य उनका नाटकों से ही आरम्भ होता है।

गद्य खण्ड

नाटक :— हिन्दी नाटकों का उस समय बहुत ही अभाव था। जो नाटक उस समय तक लिखे गये थे वे या तो अनुवाद थे, या नाटक की कोटि में रखे नहीं जा सकते थे। देव कृत देव भाषा प्रपञ्च, नेवाज का शकुन्तला, हृदयराम का हनुमन्नाटक, ब्रजवासी दास कृत प्रबोध चंद्रोदय आदि नाटक लिखे जा चुके थे किन्तु इनमें नाटकों के गुण सम्पूर्ण रूप से विद्यमान न थे। प्रभावती, प्रद्युम्न-विजय और आनन्द रघुनन्दन नाटक की कोटि में आते थे। राजा लक्ष्मण सिंह का शकुन्तला नाटक बहुत सुन्दर निकला था किन्तु यह अनुवाद था, अतएव भारतेन्दु जी ही सर्व प्रथम मौलिक नाटककार के रूप में सम्मुख आये। इसी से भारतेन्दु जी के नाटकों से आधुनिक हिन्दी नाट्य साहित्य का जन्म माना जाता है। आपने लगभग १९ अनूदित मौलिक तथा अपूर्ण नाटक लिखे।

सं० १९२५ वि० के आरम्भ से भारतेन्दु जी ने नाटकों की रचना

प्रारम्भ की। श्री ब्रज रत्न दास जी ने लिखा है कि “पहले पहल एक मौलिक ग्रंथ ‘प्रवास’ नाटक भारतेन्दु जी ने लिखना शुरु किया। यह कुछ ही लिखा जाकर रह गया।” इसी वर्ष विद्यासुन्दर-नाटक लिखा जो बँगला के विद्यासुन्दर का छाया अनुवाद है। यह हिन्दी भाषा का द्वितीय नाटक कहा जाता है। इसमें लेखक ने स्वयम् अपना चरित्र ‘सुन्दर’ में लाने का प्रयत्न किया है। तत्पश्चात् “पाखण्ड विडम्बन”, “प्रबोध चन्द्रोदय” के तीसरे अंक का अनुवाद लिखा गया। इसमें भारतीय धर्म का बिगड़ा हुआ स्वरूप रखा गया है। निष्कर्ष रूप में यह सिद्ध किया गया है कि श्रद्धा पूर्वक धर्म तथा ईश्वरोपासना से मोक्ष प्राप्त होता है। धर्म के नाम पर हिंसा तथा अत्याचार से नहीं। सन् १८७३ ई० में मौलिक ग्रंथ “वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति” की रचना हुई। जिसमें जीव हिंसा का विरोध किया गया है। १८७४ ई० में काचन लिखित संस्कृत नाटक “धनंजय-विजय का अनुवाद आपने उसी नाम से किया। महाभारत की कथा के साथ वीर रस तथा युद्ध कौशल का इसमें बहुत सुन्दर समावेश पाया जाता है।

१८७५ ई० में ‘प्रेम योगिनी’ की रचना प्रारम्भ हुई। इसका केवल प्रथम ही अंक लिखा जा सका। लेखक का चरित्र प्राप्त हो जाता यदि यह नाटक सम्पूर्ण हो जाता। बनारस के दृश्य, गंगापुत्रों का रहन-सहन, आचार व्यवहार आदि के सच्चे दृश्य इनमें रक्खे गये हैं। १८७६ ई० में ‘सत्य हरिश्चन्द्र’ नाटक ‘काशी’ पत्रिका में प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ। इस नाटक के विषय में कहना ही क्या? यह रचना बालको-पयोगी स्त्रियोपयोगी आदि सभी कुछ है। इसे सभी छोटे-बड़े एक साथ बैठ कर देख सकते हैं। सत्य की विजय ही इसका ध्येय है। ‘कपूर मंजरी’ की रचना १८७६ ई० में प्राकृत भाषा, में लिखित ‘कपूर मंजरी’ की छाया लेकर हुई। नाटक की सुन्दरता जो कुछ है सो है ही, साथ ही भारतेन्दु जी का प्राकृत भाषा पर अधिकार इस नाटक से विदित होता है, क्योंकि यह अनुवाद मौलिक ग्रन्थ का बड़ा सजीव रूपान्तर है।

सन् १८९७ ई० में 'विषय विषमौषधम्' मौलिक नाटक (भाण) की रचना भारतेन्दु जी ने की। इसमें एक ही अंक तथा एक ही पात्र द्वारा कथा तथा विषय का निर्वाह किया गया है। इसमें महाराज मल्हार राव गायकवाड़ बड़ौदा को कुत्सित व्यभिचार के कारण पदच्युत कर देने पर भारत सरकार की प्रशंसा की गई है। सन् १८७६ में 'चन्द्रावली' नाटिका का निर्माण हुआ। भारतेन्दु जी की यह श्रृङ्गार तथा भक्ति की बहुत सुंदर रचना है। नाटिका की ब्रजभाषा बहुत ही सरस, मधुर और सराहनीय है। आगे चल कर १८८१ ई० में ऐतिहासिक नाटक 'नीलदेवी' का प्रणयन हुआ। इसमें मुसलमान सेनापति अब्दुशरीफ तथा पंजाब के सरदार सूर्यदेव का युद्ध कौशल एवम् वीरता वर्णित और है। मुसलमानों का विश्वासघात तथा भारतीयों का युद्ध कौशल वीरत्व प्रदर्शित करना ही इसका उद्देश्य है। इसमें उर्दू तथा ब्रजभाषा पर भारतेन्दु जी का समान अधिकार स्पष्ट हो जाता है।

'भारत दुर्दशा' भारतेन्दु जी की मौलिक कृति है। इसमें भारत की दुर्दशा का बहुत ही करुण क्रन्दन है। करुणा के साथ हास्य रस का भी समावेश सुन्दर हुआ है। इसमें भारतीय प्राचीन गौरव के प्रति भारतेन्दु जी की श्रद्धा और उसकी रक्षा का प्रयत्न सराहनीय है। साथ ही परिहास के द्वारा समाज सुधार करने का प्रयत्न किया गया है। और आगे चल कर 'अन्धेर-नगरी' प्रहसन एक ही दिन में लिखा गया। इसमें भी शिक्षा, समाज-सुधार का प्रयत्न हास्यमयी शैली में किया गया है। हास-परिहास के द्वारा सुधार कार्य करने का एक अच्छा मार्ग भारतेन्दु जी ने निकाला था। संस्कृत से प्रभावित भारतेन्दु जी ने 'मुद्रा राक्षस' का अनुवाद भी किया; इसमें नन्द वंश का नाश, चाणक्य की क्रोधाग्नि के कारण होता है। चन्द्रगुप्त को राज्य मिलता है। राक्षस मंत्री दूसरे देशों के शासकों को सहायतार्थ बुलाता है किन्तु चाणक्य के सम्मुख कुछ भी नहीं चलती। राक्षस की अन्त में हार होती

है। किन्तु हार मान लेने पर चाणक्य उसे फिर मंत्री पद पर नियुक्त करता है। नाटक में मौलिकता का सा रस मिलता है और यही इसकी विशेषता है। इस प्रकार से सस्कृत, बँगला और नाटकों का प्रभाव उन पर लक्षित होता है। साथ ही अंग्रेजी अथवा पाश्चात्य साहित्य से भी वह बहुत प्रभावित थे। अंग्रेजी नाटककार शेक्सपियर के 'मर्चेन्ट आफ वेनिस' का भाषानुवाद 'दुर्लभ बन्धु' के नाम से आपने किया। यह ग्रंथ अधूरा रह गया जिसे प० राम शंकर जी ने उनकी मृत्यु के बाद पूर्ण किया। सच्ची मित्रता का आदर्श हमें इस नाटक में मिलता है। भारतीय ललनाओं के लिये आदर्श स्थापन की प्रेरणा से 'सती-प्रताप' नामक नाटक भारतेन्दु जी ने लिखा किन्तु इसके भी केवल चार ही अंक लिखे जा सके थे। सावित्री चरित्र का वर्णन इसमें पाया जाता है। सन् १८७७ ई० में 'भारत जननी' नामक नाटक भी आपका प्रकाशित हुआ था। इस नाटक के विषय में लोगों का कथन है कि उन्होंने इसका शोधन मात्र किया था, यह लिखा किसी और का है। इसी प्रकार की धारणाएँ 'माधुरी' नामक नाटक के भी विषय में हैं।

सन् १८८३ ई० में आपने नाट्य शास्त्र विषयक एक ग्रंथ "नाटक" शीर्षक लिखा। जो दश रूपक, भरत के नाट्य शास्त्र, साहित्य दर्पण, काव्य प्रकाश आदि के आधार पर लिखा गया था। यह ग्रंथ प्राचीन भारतीय नाट्य शास्त्र सम्बन्धी सिद्धान्तों पर है। किन्तु भारतेन्दु जी ने नाट्य शास्त्र का विशेष प्रयोग अपने नाटकों में नहीं किया। नाटकों से भारतेन्दु जी की प्रतिभा, कवित्व शक्ति, मौलिकता आदि का अच्छा परिचय मिलता है।

इतिहास :—हिन्दी गद्य साहित्य का विकास उन्नीसवीं शताब्दी से ही प्रारम्भ होता है। किन्तु प्रारम्भिक समय के ग्रन्थ कोई विशेष साहित्यिक महत्व नहीं रखते। अन्य विषयों के साथ इतिहास की भी हीन दशा थी।

अतएव भारत की उन्नति तथा भाषा की सेवा के लिये भारतेन्दु जी देश का सच्चा इतिहास जनता के सम्मुख रखना चाहते थे। इतिहास की उस समय केवल दो ही चार पुस्तकें प्रकाशित हुई थी जो अंग्रेजी पुस्तकों के आधार पर लिखी गई थीं। इतिहास विषयक यह त्रुटि भारतेन्दु जी को खटकी और इन्हीं प्रेरणाओं से इतिहास की पुस्तकों को आपने लिखना प्रारम्भ किया। भारतेन्दु जी के इतिहास-ज्ञान के विषय में बाबू ब्रजरत्नदास जी ने लिखा है—“प्राचीन समय के ऐतिहासिक साहित्य-सृजन का भी हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु जी ने ही आरम्भ किया है और ‘पुरावृत्त संग्रह’ ‘रामायण का समय’ आदि कई पुस्तकें लिखी है।” आपने लगभग १३ ग्रन्थ इतिहास विषयक लिखे हैं। और इन सभी ग्रन्थों से यह निष्कर्ष निकलता है कि आपको सामयिक एवम् प्राचीन इतिहास का अच्छा ज्ञान था। सभी ग्रन्थों में पुरावृत्त की ओर संकेत पाया जाता है। काश्मीर कुसुम, बादशाह दर्पण, उदय पुरोदय, पुरावृत्त संग्रह, पंचपवित्रात्मा, दिल्ली दरबार दर्पण चरितावली, अग्रवालों की उत्पत्ति, खत्रियों की उत्पत्ति, बूँदी राजवंश, महाराष्ट्र देश का इतिहास आदि ग्रंथ आपके प्रमुख इतिहास विषयक ग्रन्थ हैं। इनमें ऐतिहासिक खोज की गम्भीरता के साथ-साथ भाषा शैली की सरसता तथा सरलता भी विद्यमान है। सभी ग्रन्थ विषयानुसार तत्त्वपूर्ण हैं। इससे अधिक इन ग्रन्थों का विस्तृत रूप में परिचय प्राप्त करना हमारे लिये संभव नहीं है। क्योंकि हमारा विषय यहाँ पर ‘भारतेन्दु जी की कविता’ है, गद्य नहीं। अस्तु।

इसी के साथ-साथ भारतेन्दु जी के लेख एशियाटिक सोसाइटी जनरल आदि में निकला करते थे। “काशी” में काशी का सुन्दर वर्णन तथा इतिहास है। तथा ‘काल चक्र’ में भी विशेष घटनाओं का उल्लेख पाया जाता है। इसे बाबू राधाकृष्ण दास जी ने छपवाया था। भारतेन्दु जी के स्टाम्प तथा सिक्कों आदि से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह इतिहास के बहुत प्रेमी थे।

भारतेन्दु जी की रचनाओं में किसी न किसी रूप में हम देश-प्रेम, जाति-सेवा, समाज-सेवा आदि का समावेश पा ही जाते हैं। पत्रिकाओं का प्रकाशन भी इसी सेवा-वृत्ति से प्रारम्भ किया गया था। पत्रकार भारतेन्दु जी सर्व प्रथम 'कवि वचन सुधा' निकाल कर कार्य क्षेत्र में अवतीर्ण हुये थे। उस समय के पत्रों में उर्दू का बाहुल्य रहता था। इससे भारतेन्दु जी ने सरल तथा शुद्ध हिन्दी के प्रचार के लिये अपनी पत्रिकाएँ प्रकाशित की थी। 'कवि वचन सुधा' सर्व प्रथम पाक्षिक थी, फिर साप्ताहिक हो गई थी। निबंध भी राजनीतिक, सामाजिक, तथा धार्मिक विषयों के रहते थे। कुछ दिनों पश्चात् भारतेन्दु जी ने "हरिश्चंद्र मैगजीन" प्रकाशित की। फिर यही आगे चल कर 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' के नाम से प्रकाशित होने लगी थी। गद्य-पद्यमय काव्य, नाटक, इतिहास, परिहास, समालोचना आदि विषयों पर निबंध तथा कविताएँ आदि इनमें प्रकाशित होती थीं। लगभग ८ वर्ष तक यह पत्रिका हिन्दी की सेवा में तत्पर रही। सन् १८८४ में यह 'मोहन चंद्रिका' के नाम से फिर प्रकाशित हुई थी।

भारतेन्दु जी स्त्रियोपयोगी पत्रों के बहुत पक्षपाती थे। इसी कारण सन् १८७४ ई० में आपने 'बाला बोधिनी' नाम की मासिक पत्रिका उन्हीं की हित-कामना की प्रेरणा से निकली। स्त्रियों के लिये यह बहुत ही सुन्दर पत्रिका थी। लगभग ४ वर्ष तक इसका प्रकाशन होता रहा किन्तु गवर्नमेण्ट की सहायता बंद हो जाने के कारण यह भी बंद हो गई।

भारतेन्दु जी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। काव्य, नाटक, इतिहास, आलोचना आदि विषयों पर आपने इतना लिखा था कि आप 'नागरी नाह' के नाम से साहित्य क्षेत्र में प्रसिद्धि पा रहे थे। अरबी, फार्सी तथा उर्दू के आप अच्छे ज्ञाता थे 'कुरान शरीफ' का हिन्दी में अनुबाद प्रस्तुत किया था। उर्दू से आपको काफी प्रेम था और उर्दू-काव्य रचना में 'रसा' तखल्लुस रखते थे। 'गुलजारे पुर बहार' नामक

पुस्तक आपकी गजलों का दीवान है। आपने हिंदी साहित्य में उपन्यासों का अभाव देख कर 'कुछ आप बीती और कुछ जग बीती' शीर्षक एक उपन्यास कहानी भी लिखनी शुरू की। इसमें आपने अपना ही वृत्तांत लिखना प्रारम्भ किया था। दूसरे उपन्यास 'हम्मीर हठ' का भी आपने एक परिच्छेद समाप्त कर लिया था किन्तु पूरी पुस्तक समाप्त करने के लिये ईश्वर ने आपको समय ही नहीं दिया। इनके अतिरिक्त समाज सुधारक भारतेन्दु जी "भारतवर्ष के सुधार के उपाय", "भक्ति की उपयोगिता", "मित्रता", "खुशी", "अपव्यय", "इङ्गलैंड और भारत की होली", "श्रुति रहस्य", "भागवत स्तुति", "सूर्योदय" आदि बहुत से लेख लिखे थे। इन लेखों में भारत की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि विषयों पर विचार प्रकट किये गये थे। साथ ही सभी क्षेत्रों में सुधार तथा पुनरुद्धार की व्यवस्था कर दी गई है।

यह तो हम पहले ही देख चुके हैं कि भारतेन्दु जी उत्तरी भारतवर्ष की लगभग सभी भाषाओं में पारंगत थे। इसी से आपको साहित्यिक क्षेत्र में बड़ी सुगमता रहती थी। सम्पादन कला में भी आप दक्ष थे। घनानंद कृत "सुजानशतक" आपने ही प्रकाशित करवाया था। "पावस कविता संग्रह" तथा "सुन्दरी तिलक" आदि आपके किये श्रेष्ठ कविता संग्रह हैं। कवि हठी लिखित "राधा सुधा शतक", देव कवि लिखित "सुंदरी सिद्धर", रत्न हरिदास कृत "कोशलेश कविता", संतोष सिंह द्वारा विरचित "कवि हृदय सुधाकर", आनंद घन कृत "सुषमा शतक", गुलाब मट्ट की "राधा रमण शृङ्गार", सूरदास जी की साहित्य लहरी तथा अनेक प्राचीन ग्रंथ आपने सम्पादित एवम् प्रकाशित किए थे। 'यमक संग्रह', 'मलार जयंती, (कजली), 'मलारावली', 'नई बहार' आदि संगीत पुस्तकें भी आपने प्रकाशित करवाई थीं। भारतेन्दु जी द्वारा सम्पादित तथा प्रकाशित, इस प्रकार के लेखों का पूरा विवरण यहां देना कठिन हो जायेगा। यह तो हम

उनकी बहुमुखी प्रतिभा पर एक दृष्टिपात मात्र कर रहे हैं ।

काव्य खण्ड

धर्म ग्रंथ :— कृष्णोपासक परम वैष्णव भारतेन्दु जी सांसारिक सुखों में लिप्त होते हुए भी अधर्म से बहुत डरते थे । ईश्वरोपासना तथा धर्म उनके जीवन में बहुत महत्व रखते थे । अधिकतर आपके काव्यों में धर्म तथा ईश्वरोपासना का समावेश इसी कारण हुआ है । धर्म-तत्वों की प्राप्ति आप को गम्भीर अध्ययन से हुई थी तथा धर्म ज्ञान आपका बहुत पुष्ट था । आपके धार्मिक-ग्रंथों को देखने से यह विदित होता है कि आप सच्चे वैष्णव थे और भक्ति मार्ग के अनन्य अनुगामी थे । बाल्यावस्था से ही आप धर्म में अनुराग रखने लगे थे किन्तु “पानी में पानी डालना” आदि वाह्याडम्बर आप को पसंद न थे । वह सुपात्रों को हर प्रकार का दान देना अपना धर्म समझते थे । ऐसे दानों के कारण वह स्वयम् निर्धन हो गये थे । आपकी धर्म विषयक काफी पुस्तकें प्रकाशित हुईं । सर्व प्रथम सिद्धान्त प्रतिपादक ग्रंथों में “कार्तिक कर्म विधि” प्रकाश में आई । इसमें पुराणों के आधार पर कार्तिक महीने की नित्य क्रिया का वर्णन किया गया है । और इसी के पश्चात् १८७२ ई० में “कार्तिक नैमित्तिक कृत्य” पुस्तक प्रकाशित हुई । जैसा पुस्तक का शीर्षक है, उसमें नैमित्तिक धर्म-कृत्य का वर्णन पाया जाता है ।

जगन्नाथ पुरी की यात्रा में सिंहासन पर भैरव की मूर्ति देख कर आपने “तहकीकात पुरी की तहकीकात” नाम की पुस्तिका लिखी जिसमें अपने विचारों की पुष्टि के लिए पुराणों तथा अन्य धार्मिक ग्रंथों के उद्धरण दिये गये थे । आगे चल कर कार्तिक-महात्म्य की भाँति “वैशाख महात्म्य” भी लिखा गया । ९३ दोहों में इस मास धर्म-कर्मों का वर्णन किया गया है । इसी के अन्त में ‘पुरषोत्तम पंचक’ नाम का एक पद भी जुड़ा है । इनका रचना काल १८७२ ई० है । बाबू

शिवनन्दन सहाय कृत 'हरिश्चन्द्र' (पृष्ठ २१३) के अनुसार १८८३ ई० में भारतेन्दु जी ने "चतुश्लोकी" नामक वल्लभाचार्य के ग्रंथ का अनुवाद किया। १८७३ ई० में "भक्ति सूत्र वैजयंती" नामक पत्रिका की रचना हुई। भक्ति शास्त्र पर श्री नारद-कथा तथा ऋषि शाण्डिल्य के सूत्रों का विवेचन है। यह एक प्रकार से शाण्डिल्य के सूत्रों का ही अनुवाद है। 'भक्ति महात्म्य' तथा सौ सूत्रों का परिचय इसमें किया गया है। 'दैव्य प्रलाप' नाम से आठ पद भी लिखे गये हैं।

'तदीय सर्वस्व' पुस्तक १८७४ ई० में लिखी गई। इसमें भी नारद भक्ति सूत्र का हिन्दी भाष्य है। सूत्रों का भाषानुवाद और साथ ही हिन्दी भाष्य देकर यह पुस्तक लिखी गई। भक्ति रस का सुंदर समावेश इसमें पाया जाता है। उपक्रम में "केवल प्रेम ही परमेश्वर का नित्य मार्ग है" लिखा है। १८७५ ई० में 'पुराणोपक्रमणिका' पुस्तक प्रकाशित हुई जिसमें १८ पुराणों के विषयों को संक्षेप में रख कर पुराणों का परिचय सा दिया गया है। कितने परिश्रम से यह पुस्तक लिखी गई होगी अनुमान करना कठिन हो जाता है। छप्पय छन्द में लिखा हुआ "उत्तरार्ध भक्तमाल" सन् १८७६ ई० में प्रकाशित हुआ था। भक्तमाल के हरि-भक्तों के चरित्रों का वर्णन इसमें किया गया है। भारतेन्दु जी ने १८७६ ई० में "युगल सर्वस्व की रचना की जिसमें भगवान् श्री कृष्ण तथा राधा जी के सखा, सखी, दासी आदि का वर्णन किया गया। यह गद्य-पद्य दोनों में लिखी गई है। तत्पश्चात् 'गो महिमा' पुस्तक की रचना की गई। शास्त्रानुसार गो-महिमा का वर्णन इसमें किया गया है। धार्मिक परिस्थितियों के कारण ही भारतेन्दु जी ने इस प्रकार के ग्रंथ लिखे थे। आपने लिखा था "बड़ी बड़ी गोशालाएँ कीजिये, बहुत सी गऊ खरीदिये, मुसलमानों को हाथ जोड़िये, समझाइये" क्योंकि अंग्रेजों की तो यह नीति ही थी कि हिन्दू मुसलमानों का झगड़ा बढ़े। इस वैमनस्य से वह सदा लाभ में रहे। भारतेन्दु जी ने इस परिस्थिति को सुधारने का प्रयत्न बराबर किया।

“वैष्णव और भारतवर्ष” नाम की पुस्तक इसके बाद प्रकाशित हुई थी। इसमें प्राचीन वैष्णव धर्म तथा नवीन धर्म की समानता दिखलाई गई है और भारत के ऐक्य की ओर बहुत सुन्दर ढंग से सकेत किया गया है। वैष्णव, ब्राह्म, शैव, आर्य समाजी तथा अन्य सम्प्रदायों के एक दूसरे से विरक्त रहने के कारण उत्पन्न कमजोरी की ओर निर्देश किया गया है। साथ ही सगठन की विशेषता की ओर ध्यान आकर्षित किया है। भारतवासियों को एकता की ओर अग्रसर होने के लिए बहुत सुन्दर प्रेरणा दी गई है। इसी प्रकार से ‘उत्सवावली’ में भारत के सब उत्सवों का वर्णन है। “भक्त सर्वस्व” आपकी सुन्दर रचनाओं में गिनी जाती है। इसमें राधा-कृष्ण के चरण, अनेक चिन्ह तथा नख-शिख का वर्णन किया गया है। इसका रचना काल १८७० ई० है। कार्तिक तथा वैशाख महिमा की ही भाँति आप ने “मार्गशीर्ष महिमा” की भी रचना की। भगवद्गीता तथा भागवत के आधार पर ही इसकी भी रचना हुई। “वैष्णव सर्वस्व” में वैष्णवों के चारों सम्प्रदायों, रामानुज, विष्णु, माधवाचार्य तथा निम्बादित्य की परम्परा तथा अन्य आचार्यों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। “वल्लभीय सर्वस्व” भी आपने एक छोटा सा ग्रंथ लिखा जो श्री बल्लभाचार्य जी की महिमा के विषय में लिखा है। “सर्वोत्तम स्तोत्र भाष्य” बल्लभाचार्य जी के १०८ नामों की सूची दी गई है। यह ग्रंथ विट्ठलनाथ जी के बनाए हुए स्तोत्रों का अनुवाद है। “पुरषोत्तम मास विधान” में स्थान, दान आदि की विधि का परिचय भारतेन्दु जी ने दिया है। सं० १९३८ बि० में “विनय प्रेम पचासा” प्रकाशित हुआ था। विनय के यह ५० पद दीनता तथा करुणा से सक्त है। पद, छंद, दोहों से यह ग्रंथ संग्रहीत है। “प्रातः स्मरण मंगल पाठ” में सभी पद मंगल शब्द से प्रारम्भ होते हैं। २६ पदों में श्री नाथ स्तुति, श्री कृष्ण, श्री राधा जी तथा बल्लभाचार्य जी की वन्दना की गई है। इसकी भाषा शैली आदि रास पचाध्यायी की भाँति ही हृदयस्पर्शी है। “श्री सीता वल्लभ स्तोत्र” संस्कृत के ३० श्लोकों

का ग्रंथ है यह सं० १९३६ वि० में प्रकाशित हुआ। वन्दना के अतिरिक्त इस पुस्तक से भारतेन्दु जी का संस्कृत ज्ञान स्पष्ट हो जाता है।

भारतेन्दु जी के धर्मग्रन्थों पर दृष्टि डालने से ऐसा कहा जा सकता है कि उनको इस प्रकार विभाजित करना अनुचित न होगा:—

सिद्धान्त प्रति पादक ग्रन्थ-जिनमें अधिकतर वैष्णव धर्म के सिद्धान्तों का कथन किया गया है—कर्मकाण्ड, व्रत उपवास, दान, स्नान आदि के विधान का कथन है। दूसरे धर्म ग्रंथ भी इसी श्रेणी में आ जाते हैं।

दूसरे प्रकार के ग्रन्थ हैं भक्ति सम्बन्धी। इनमें भक्ति के अनेक रूप देखते हैं। नवधा भक्ति के सभी अङ्गों का स्पर्श भारतेन्दु जी में मिलता है।

तीसरे प्रकार के ग्रन्थ श्रृङ्गारिक हैं। यद्यपि इनमें लौकिक श्रृङ्गार का वर्णन मिलता है किन्तु वह भारतेन्दु जी की धार्मिक पृष्ठ भूमि के रूप में होने के कारण धर्म ग्रन्थों में स्थान पा सकते हैं। वैसे तो भक्ति विषयक ग्रन्थों में श्रृङ्गार का पूरा समावेश है।

भक्ति भाव हमें 'प्रेम फुलवारी', 'प्रेम प्रलाप', 'प्रेमाश्रुवर्षण', 'प्रेम माधुरी', 'प्रेम मालिका', 'प्रेम तरंग', और 'प्रेम सरोवर' आदि ग्रंथों में मिलता है। साथ ही श्रृङ्गार आदि का भी वर्णन इनमें हुआ है। भारतेन्दु जी के ग्रंथों में एक ही विषय तथा रस का समावेश नहीं मिलता वरन् हम सभी प्रकार की कवितायें इनमें पाते हैं।

प्रेम फुलवारी—सूरदास जी की भांति पतित के उद्धार की प्रार्थना इसमें की गई है। इस ग्रंथ में ९३ पद हैं और इसे भूमि, वृक्ष, मूल तथा फल नामक चार अध्यायों में विभाजित किया है। अन्त में श्री राधा जी की स्तुति में १३ पद दिये हैं। यद्यपि श्रृङ्गार का समावेश इसमें हुआ है फिर भी सात्विकता मीरा आदि की भांति है। तन्मयता से पद सराबोर हैं। भक्ति तथा प्रेम का बहुत सुन्दर वर्णन भारतेन्दु जी ने किया है।

प्रेम प्रलाप—प्रेम प्रलाप में ७५ पद है। इसमें कुछ सवैया तथा कवित्त, एक सस्कृत की अष्टपदी तथा दो एक गुजराती पद संगृहीत हैं। प्रेमोन्मत्त भारतेन्दु जी की भाषनाओं का चित्रण इस काव्य में सुंदर हुआ है। इसमें भारतेन्दु जी अपने को “चाकर हँ अज साँवरे के जिन टेटन ऊपर फँट कसी है” स्वीकार करते हैं। इस ग्रन्थ में राधा कृष्ण पर लाछनो की भरमार है और अपनी दीनता एवम् पापात्मा को पार लगाने की विशेष प्रार्थना की गई है।

प्रेमाश्रुदर्पण—४६ पदों का प्रेमाश्रुवर्षण ग्रन्थ वर्षा ऋतु में गोपिकाओं के सात्विक प्रेम की भावना से समन्वित उनके विरह तथा भावी सुख संयोग कल्पना का अच्छा दिग्दर्शन कराता है। कवि की कल्पना की मानो यह साकार मूर्ति है। वर्षा ऋतु की क्रीड़ा, पारस्परिक वार्तालाप, प्रकृति तथा वर्षा ऋतु का बहुत सुन्दर वर्णन इसमें मिलता है।

प्रेम माधुरी—प्रेम माधुरी में १३१ पद है। ब्रज भाषा का निखरा हुआ रूप हमें इस ग्रन्थ में मिलता है। भारतेन्दु जी का काव्य इस ग्रन्थ में घनानंद से बहुत कुछ साभ्य रखता है। विरह विधुरा गोपिकार्यों सात्विक प्रेम में विभोर है। एक-एक सवैया करुणा तथा वियोग व्यथा से परिपूर्ण है जो तत्क्षण हृदय को आन्दोलित कर देता है। इसका रचना काल सं० १९३२ वि० है। अलंकारों का समावेश भी स्वाभाविक रूप में ही हुआ है। उनको प्रदर्शित करने का कहीं भी प्रयत्न नहीं किया गया। स्वच्छ प्रेम की नदियाँ बड़े ही सरल प्रवाह से बही हैं। बाबू बजरत्न दास जी के अनुसार भारतेन्दु जी का यह प्रिय ग्रन्थ था।

प्रेम मालिका—इस मालिका में सौ पद संगृहीत है जो प्रेम लीला तथा दैन्य सम्बन्धी हैं। अनुभूति तथा भक्ति का मधुर वर्णन एवम् गम्भीर दर्शन हम इस ग्रन्थ में करते हैं। कटूक्तियाँ तथा उपालंभ विषयक पद हृदय को प्रभावित कर देते हैं। परन्तु पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव इन्

कविताओं पर स्पष्ट लक्षित हो जाता है। फिर भी भारतेन्दु जी को अपनी मौलिकता का श्रेय अत्यधिक है।

प्रेम तरङ्ग—सं० १९३४ वि० मे भारतेन्दु जी का यह संग्रह प्रकाशित हुआ। इसमें १४८ पद हैं। ये पद साधारण रूप से गेय हैं। और स्त्रियों द्वारा विवाहोत्सव पर गाई जाने वाली भड़ी गालियों के स्थान पर प्रयोग करने के लिये भारतेन्दु जी ने इनका सृजन किया था। इसी कारण इनमें सांसारिक प्रेम, पञ्जाबी गीत, बारहमासा, लावनियाँ, गजलें, बँगला के पद तथा लीला सम्बन्धी रचनायें पाई जाती हैं। साथ ही इन छोटे-छोटे विषयों तथा भावों को लेकर काव्य रचना बहुत सुन्दर हुई है।

प्रेमसरोवर—इसकी भूमिका १९३० सं० वि० मे लिखी गई है और यही इसका रचनाकाल भी है। ४१ दोहों का यह एक छोटा सा सुन्दर ग्रन्थ है। रचनाकार ने स्वयम् भूमिका मे “प्राननाथ के न्हात हित” इसकी रचना की है। लगभग १४ दोहो मे ‘प्राननाथ’ के पास तक पहुँचने की दुरुहता का वर्णन किया गया है। सरोवर की सुन्दर शोभा, प्रेम की महिमा, प्रेम का अभाव, तथा सच्चे प्रेम की परिभाषा इन दोहों में की गई है। इसके दोहे सरल हैं। शब्दों का तोड़-मरोड़ नहीं हुआ है।

उपरोक्त ग्रन्थों में भक्ति के साथ-साथ लौकिक श्रृंगार का भी वर्णन पाया जाता है। किन्तु श्रृंगार का विशद वर्णन “फूलों का गुच्छा” नामक पुस्तक मे हुआ है। यह ग्रन्थ सं० १९३९ वि० में प्रकाशित हुआ था। इसमें १३ लावनियाँ हैं। प्रेम तरंग की भी कुछ लावनियाँ आ गई हैं। ग्रंथ में श्रृंगार का वर्णन तो है ही, साथ ही साधारण चलती भाषा का प्रयोग किया गया है। श्रृंगार का वर्णन वर्षा-विनोद में बहुत सुन्दर हुआ है। इसका प्रकाशन काल सं० १९३७ वि० है। इसमें १३० पद हैं। ग्रंथ में गजलें, दोहे, लावनियाँ, खेमटा, सोरठा, मलार आदि समन्वित हैं। गजलों आदि की भाषा उर्दू से

परिपूर्ण है। तथा पदों में ब्रजभाषा और खड़ी बोली का समावेश भी है। भक्ति तथा श्रृंगार इस ग्रन्थ के विशेष रस हैं। भगवद्भक्ति इन सभी का प्रधान विषय है। वर्षा गीत, लीला सम्बन्धी पदों का इसमें सुन्दर संग्रह है। हिंडोला और कजली भी इसमें हैं। कहीं-कहीं पर देश की दुर्दशा का वर्णन भी आ जाता है, फिर राधा कृष्ण के विषय चलने लगते हैं। भारतेन्दु जी के श्रृंगारिक काव्य में 'सतसई सिंगार' का विशेष महत्व है। रीति कालीन कवियों का अनुसरण भारतेन्दु जी ने पूर्ण रूपेण किया ही था। महाकवि बिहारी लाल के दोहा को लेकर स० १९३५ वि० में उन पर कुण्डलियाँ लगाई गईं। जो दोहा आपको अधिक पसन्द आया उस पर आपने कई कुण्डलियाँ बना डालीं। विषय तथा भाषा को बिहारी की ही भाँति निभाने का आपने पूरा प्रयत्न किया है। सफलता का तो पाठक ही निर्णय कर सकते हैं।

वेणु गीत—सं० १९३४ वि० में 'वेणुगीत' प्रकाशित हुआ। वंशी ध्वनि की माधुरी के वर्णन में १३ पद तथा ३ दोहे इस ग्रंथ में संगृहीत हैं। सूरदास जी की वंशी कृष्ण को अपनी सेवा में संलग्न रखती थी और यहां भारतेन्दु जी की वंशी गोपियों के भाग्य की रेखा है। ध्वनि सारे ससार को वश में किये हैं।

राग संग्रह—भारतेन्दु जी ने अपने संगीत प्रेम को 'राग संग्रह' पुस्तक के रूप में साकारता प्रदान की। आपका संगीत-ज्ञानयों तो गेय पदों से विदित होता ही है परन्तु इस ग्रंथ में विभिन्न रागों में विभिन्न समय तथा रागानुकूल भावनाओं तथा कल्पनाओं का समावेश किया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि संगीत के भारतेन्दु जी अच्छे ज्ञाता थे। इसमें १४१ भजन हैं। ग्रीष्म ऋतु जयन्ती, जन्म लीला दैन्य सम्बन्धी विषयों के भजन अथवा पद बहुत सुन्दर हैं। श्री बल्लभाचार्य तथा श्री गिरिधर जी का कीर्तन भी है। यह सं० १९३७ में प्रकाशित हुआ था।

१३ छप्पयों का 'स्वरूप चिन्तन' सं० १९३१ में प्रकाशित हुआ था जिसमें श्री कृष्ण के मंदिरों की मूर्तियों की नामावली और उनका महत्व दिखलाया गया है। सवत् १९३१ में 'प्रबोधिनी' पुस्तक भारतेन्दु जी ने प्रकाशित की। २५ छप्पयों में कात्तिक शुक्ल एकादशी के देवोत्थान के उत्सव हितार्थ यह रचा गया। विष्णु जी की निद्रा खुलने पर मंगल गायन, वादन, भक्ति-उद्धारों से ये छप्पय परिपूर्ण है। सं० १९३१ में दौंगला भापा से प्रभावित भारतेन्दु जी ने पयार छंद में 'प्रातः समीरन' का वर्णन किया। कोमल शब्दों में प्रातः कालीन मंद सुगन्ध वायु का वर्णन सुन्दर हुआ है तत्पश्चात् सं० १९४० में कृष्ण चरित्र नामक पुस्तक भारतेन्दु जी ने बनाई। इसमें पद सवय्या और कवित्त मिला कर कुल ५१ छंद हैं। गंगा जी की महिमा के कुछ पद छोड़ कर शेष श्री कृष्ण के चरित्र का ही वर्णन किया गया है। भारतेन्दु जी के कुछ ग्रन्थ बहुत छोटे हैं। केवल दो-दो पन्नों में, जिनकी शैली तथा विषय आदि भी उपरोक्त ग्रंथों के समान ही हैं। और विभिन्न कहानियों में वही शैली प्रतिपादित की गई है। 'दान लीला', 'तन्मय लीला', 'रानी छद्म लीला', 'भीष्मस्तवराज', 'श्री नाथ स्तुति', 'अपवर्ग पंचक', 'होली' आदि ग्रन्थ हैं जिनमें शीर्षक के अनुसार विषयों का प्रतिपादन पूर्वोक्त शैली में ही हुआ है। श्री जयदेव कृत 'गीत गोविन्द' का भाषानुवाद भारतेन्दु जी ने "गीत गोविदानन्द" के नाम से किया है। यह रचना सं० १९३१ में हुई थी। अनुवाद की सुंदरता सराहनीय है। मधुरता एवम् काव्य सौष्ठव के कारण यह मौलिक ग्रंथ जान पड़ता है।

अब तक हम भारतेन्दु जी का काव्य प्राचीन शैली में ढला हुआ पाते रहे, किन्तु आगे चल कर हम उन ग्रंथों का परिचय प्राप्त करेंगे जिनमें भारतेन्दु जी की विचारधारा में परिवर्तन दिखलाई पड़ता है। तत्कालीन परिस्थितियों के कारण देश में अशांति थी। जनता के विचारों में अन्तर आने लगा था। देशवासी देश की उन्नति की

ओर अग्रसर होने लगे थे । भारतेन्दु जी ने परिस्थितियों से प्रभावित हो कर राजनीति अथवा राजभक्ति विषयक ग्रंथों की रचना देश की परिस्थिति के अनुकूल करनी प्रारम्भ की । भारतेन्दु जी के जीवन का एक बड़ा अंश समाज सुधार, अंध-विश्वास निराकरण, शिक्षा प्रसार, भाषा तथा साहित्य प्रचार में ही व्यतीत हुआ था । राजभक्ति तथा देशभक्ति विषयक ग्रन्थों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतेन्दु जी राजनीतिक विप्लव उत्पन्न करना नहीं चाहते थे वरन् भारत के उन्नत प्राचीन गौर्व को जनता के सम्मुख कर, जागृति का प्रकाश देकर भारतवासियों के अज्ञान और संकीर्णता को दूर करना चाहते थे । पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान एवम् साहित्य हमारे भाषा, साहित्य, धर्म आदि का स्थान ले रहा था । इसी ने हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति का लोप हो रहा था । भारतीय कला भी अवनति की ओर अग्रसर होती जा रही थी । इन सब की रक्षा के हेतु भारतेन्दु जी ने पहले तो रीति तथा प्राचीन प्रगाली के ही आधार पर काव्य सृजन प्रारम्भ किया । फिर आगे चल कर अन्य भाषाओं से प्रभावित होकर खड़ी बोली तथा उर्दू ढंग पर रचना होने लगी ।

राजभक्ति विषयक काव्य से भारतेन्दु जी चतुर राजनीतिज्ञ विदित होते हैं । हम पहले ही कह चुके हैं कि भारतेन्दु जी का तात्पर्य न तो राज विद्रोह उत्पन्न करना था और न स्वार्थवश राजभक्ति प्रदर्शित करना, वरन् वह राजा की स्तुति कर के ही अनेक प्रकार के सुधार देश में करा लेना चाहते थे । भारतीय राजनीति में राजा भगवान का दूत अथवा देवदूत माना जाता है जो प्रजा का रक्षक है । भारतेन्दु जी ने इसी आधार पर राजा की स्तुतियाँ की हैं । स० १९१८ में विकटोरिया के पति एलबर्ट की मृत्यु पर आपने “स्वर्गवासी श्री अलवरत वर्णन अ लोपिका” की रचना की । छप्पयों में अल अब अर अत आदि अक्षरों के संयोग से अलवरत पाँच अक्षरों में २६ प्रश्नों के उत्तर दिये हैं । ड्यूक आव एडिनबरा के भारत आने के अवसर पर

स्वागत पत्र “श्रीः राजकुमार सुस्वागत पत्र” की रचना हुई। यह सं० १९२६ अथवा १८६९ ई० में बनाया गया था। राजकुमार की प्रशंसा तथा उनका स्वागत गद्य-गद्य में किया गया है। सं० १९२७ में आने “सुमनाञ्जलि” को सम्पादित किया। सं० १९२८ अथवा १८७१ ई० में श्रीमान् प्रिन्स आफ वेल्स के पीड़ित होने पर कविता की रचना हुई। इसमें ईश्वर से यूवराज के नीरोग होने की प्रार्थना की गई थी। सं० १९२९ में श्री जीवन जी के अशेष गुणों का वर्णन किया गया है। और प्रश्नों का उत्तर श्री जीवन शब्द में ही आ जाता है। सं० १९३१ में राजकुमार ड्यूक आव एडिनबरा की नववधू के मुँह दिखावनी के उपलक्ष्य में इस ग्रन्थ की रचना हुई। तत्पश्चात् सं० १९३२ में राज कुमार शुभागमन वर्णन विषयक कविता बनाई गई जिसमें सम्राट एडवर्ड सप्तम प्रिन्स आफ वेल्स के भारत आने के अवसर पर उनकी स्तुति की गई है।

उपरोक्त सभी ग्रन्थों में भारतेंदु जी ने राजा-प्रजा के अच्छे सम्बन्धों को दिखलाने का प्रयत्न किया है। राजा को प्रजा पालक, दोष-निवारक बनाने के हेतु इस प्रकार का काव्य रचा गया। साथ ही भाषा-साहित्य की उन्नति के लिए भी हिन्दी भाषा में ये ग्रन्थ लिखे गये।

संवत् १९३२ में आपकी “भारत शिक्षा” पुस्तक प्रकाशित हुई थी। बाबू हेमचन्द्र बनर्जी की कविता की छाया लेकर दोहे चौपाइयों में यह ग्रन्थ लिखा गया। इसे एक प्रकार से भावानुवाद ही कह सकते हैं। किन्तु आकार, शैली तथा बहुत से विचार भी अपने रखे गए हैं। ग्रन्थ में भारतवासियों को जगने तथा कर्म-मार्ग में लगने का उपदेश दिया गया है।

“मानसोपायन” में “जुवराज” को भारत की रक्षा करने के लिए आवाहन किया गया है। इसका गद्य खण्ड भी सुंदर है। गुजराती कविता का भी समावेश यत्र तत्र हुआ है।

“मनोमुकुलमाला” का सृजन स० १९३४ में हुआ था। महारानी विक्टोरिया से भारत की दशा के वर्णन के साथ रक्षा की प्रार्थना इस ग्रंथ में भी पाई जाती है। और इसी के पश्चात् स० १८७६ ई० में विक्टोरिया शाहेशाहान हिन्दोस्तान पर एक गजल प्रकाशित हुई। इसमें उर्दू की छटा के साथ विषय का प्रतिपादन अच्छा किया गया है।

“भारत वीरत्व” नाम का ग्रन्थ भारतेन्दु जी का स० १९३५ में प्रकाशित हुआ। इसमें कुछ पद विजयिनी विजय वैजयन्ती तथा भारत रक्षा के आगे है। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ग्रन्थावली में इसकी प्रति बिल्कुल अलग निकाली गई है। इसमें भारतीय वीरों को युद्ध में सम्मिलित होने के लिए उत्साह दिलाया गया है। स० १९३६ में “इन्दर सभा” उर्दू के नाटक के आधार पर भारतेन्दु जी ने व्यंग्य काव्य (Parody) “बदर सभा” बनाया। इसमें उर्दू पर कटाक्ष सुन्दर हुआ है।

“विजय वल्लरी” नाम का ग्रन्थ स० १९३८ में अफगान युद्ध के समाप्त होने पर प्रकाशित हुआ। ४२ दोहों का यह ग्रन्थ मातृभूमि-देश प्रेम से परिपूर्ण है किंतु इसमें भी अंगरेजों की सराहना की गई है।

“विजयिनी विजय पताका या वैजयन्ती” का रचना काल स० १९३९ है। सन् १८८२ ई० अंग्रेजों का प्रभुत्व मिश्र देश पर भारत सेना की सहायता से स्थापित हो गया था; इसी शुभ अवसर बनारस इन्स्टीट्यूट में एक विशेष सभा हुई थी उसमें भारतेन्दु जी ने यह कविता पढ़ी थी। इसमें प्रारम्भिक स्थलों में भारत की दीन हीन दशा का करुणापूर्ण वर्णन है, और वर्तमान काल की परिस्थितियों पर विचार किया गया है। ब्रिटिश राज्य की इस विजय की सराहना करते हुये भारत की दशा सुधारने की ओर संकेत एवम् प्रार्थना की गई है। ९४ पदों, दोहों तथा चौपाइयों का यह एक सुंदर ग्रन्थ है जिसमें राजभक्ति

देशभक्ति, भारत की प्राचीन गौरव-गाथा आदि विषयों का समावेश है। समय के साथ चलने वाले भारतेन्दु जी देश-प्रेम के कारण कभी कभी भारत सरकार की तीव्र आलोचना भी कर डालते हैं। और व्यंग्य का आधार लेकर “नए जमाने की मुकरियाँ” लिखते हैं। स० १९४१ में यह मुकरियाँ प्रकाशित हुई थी जो कि सख्या में १४ है, अंग्रेजी, पुलिस आदि विषयों पर इनमें मार्मिक व्यंग्य हैं।

स० १९४१ में ही आपकी “जातीय संगीत” नामक कविता प्रकाशित हुई। चौपाई, छन्द में रचित तथा ६ भागों में विभाजित इस काव्य में ईश्वर से देश, जाति रक्षा हेतु प्रार्थना की गई है। आपकी अन्तिम राजभक्ति तथा जानिभक्ति विषयक “रिपनाष्टक” नामक कविता बहुत ही ख्याति प्राप्त है। यह भी स० १९४१ में लिखी गई थी। ‘रिपन’ साहब ने भारत की उन्नति के लिये बहुत कुछ किया था इसी से उनके सराहनीय कार्यों की स्तुति छप्पयों में की गई है। भारतेन्दु जी की हास्य-विनोद की प्रवृत्ति राज-भक्ति विषयक कविता संग्रहों में अब तक हम पाते रहे। किन्तु अब इस विषय के कुछ ग्रंथ हम यहाँ अलग से अवलोकन करेंगे। भारतेन्दु जी का हास्य बहुत संयत रहता था। विषय तथा गौरव को महत्व देते हुये ये मीठी चूटकी अपने काव्य में लेते थे। गद्य परिहास में “प्रहसन पंचक” के पाँच निबंध हास्य व्यंग्य सम्बन्धी सुन्दर हैं। इनके नाम “ज्ञा विवेकिनी सभा”, “स्वर्ग सभा”, “सर्व जाति गोपाल की”, “बसन्त पूजा” तथा “खण्ड भंड सवाद” है। इनमें कुछ व्यक्ति गतआक्षेप भी हैं। “स्वर्ग में विचार सभा” में स्वामी दयानन्द तथा केशवचंद सेन के स्वर्ग में स्थान पाने अथवा न पाने के विषय में व्यंग्य तथा हास्य के आधार पर विवेचन किया गया है। इसका अनुवाद अंग्रेजी में भी हुआ था। “परिहासिनी” में ‘पाँचवा पैगम्बर’ एक सुन्दर लेख है। कवितायें अधिकतर लोभी, कुचाली बनियों, अंग्रेजी सभ्यता के बुरे प्रभाव तथा भारतीय सभ्यता के अनमेल

समन्वय आदि विषयों पर लिखी गई है। मुकरियों में अंग्रेजी ग्रेजुएट, पुलिस आदि विषयों का उपहास किया गया है। इनके पश्चात् 'हिन्दी भाषा' के ऊपर भी आपने एक निबन्ध लिखा था। इसमें हिन्दी भाषा से सम्बन्धित लगभग सभी भाषाओं के उदाहरण हैं। भारत की विभिन्न बोलियों के तथा अंग्रेजी के भी उदाहरण हैं। बिहारी भाषा का गद्य तथा पद्य भी मनोरंजक है। "हिन्दी की उन्नति पर लेक्चर" आपका बहुत ही ख्याति प्राप्त तथा सुन्दर काव्य है। इसमें मातृभाषा की उपयोगिता तथा अन्य भाषाओं की संकुचित क्षेत्रों में उपयोगिता प्रदर्शित की गई है। मातृभाषा के बिना भारत की उन्नति असम्भव है उसी पर इसमें जोर दिया गया है।

"कविताष्टक और संगीतसार" में गान-विद्या तथा उसका इतिहास दिया गया है। "कृष्ण भोग" में पाकशास्त्र पर प्रकाश डाला गया है। भारतेंदु-प्रभावली के अनुसार भारतेंदु की स्फुट कविताओं में दोहे, सोरठे, सवय्या, कवित्त, पद, गीत, विभिन्न रागिनियाँ, भजन, मलार, होली, गजलें, समस्याएँ आदि आती हैं। दोहों, सोरठों, में राधाकृष्ण की स्तुति एवम् प्रेम का वर्णन है। गोपिकाओं का उपालम्भ, नामक नायिकाओं का विरह वर्णन प्रदर्शित है। इसी विषय का प्रतिपादन कवित्त तथा अन्य छंदों में भी हुआ है। मलार चौताल राग में कुतुबुद्दीन के राउय में हिन्दुओं की दशा का वर्णन किया गया है। ईश्वर से इन कष्टों के निवारण के लिये प्रार्थना भी की गई है। जल दत्तितालारग में ऐतिहासिक वर्णन भी इसी प्रकार किया गया है। इसमें सिकन्दर का पंजाब में पुरु राजा से युद्ध वर्णित है। पोरस की वीरता भोजपूर्ण शैली में कही गई है। "होली युद्ध" में भारतवर्ष की प्रचलित होलियों की ही भाँति दो होलियाँ लिखी गई हैं। गजलें उर्दू शब्दों से परिपूर्ण हैं। इनका विषय भी विरह ही है। कुछ गजलें कृष्ण भक्ति में सराबोर हैं। अन्त में कुछ समस्या पूर्तियाँ भी हैं।

उपरोक्त रचनाओं का परिचय प्राप्त कर लेने के उपरान्त हम

भारतेन्दु जी की रचनाओं को नीचे लिखे क्रम से विभाजित कर सकते हैं :—

१—गद्य खंड तथा

२—पद्य खंड

गद्य खंड से हमारा सम्बन्ध यहाँ नहीं है । पद्य खण्ड के अन्तर्गत :—

(१) धार्मिक ग्रंथों में प्रथम तो सिद्धान्त प्रतिपादक ग्रन्थ है जो कुछ तो (अ) वैष्णव धर्म सम्बन्धी तथा कुछ (ब) अन्य धर्म सम्बन्धी ।

(२) भक्ति सम्बन्धी ग्रन्थों में कही तो काव्य सात्विकता तथा निर्लिप्त भावना से पूर्ण है और कही भक्ति-श्रृङ्गार तथा प्रेम से ओत-प्रोत है । यों तो सात्विक भावना का समावेश सुन्दर है किन्तु ऐहिक रूपकों के आधार पर भक्ति का प्रदर्शन भारतेन्दु जी रोक नहीं पाते । ग्रन्थों के अनुसार इन प्रवृत्तियों का विभाजन नहीं किया जा सकता क्योंकि सभी ग्रन्थों में श्रृङ्गार तथा सात्विकता साथ साथ-पाई जाती है । भक्ति तथा रीति दोनों कालों से प्रभावित भारतेन्दु जी के दर्शन हम को होते हैं ।

(३) तृतीय प्रकार के ग्रन्थों में रीति कालीन श्रृङ्गार रस पूर्ण लीला, विरह, संयोग आदि का वर्णन मिलता है । प्राचीन परिपाटी के अनुसार भारतेन्दु जी ने छंद, अलंकार शास्त्र तथा श्रृङ्गार रस के अंग उपागों को अपनाया है (किन्तु इनमें नग्न सौन्दर्य तथा विलासिता का समावेश नहीं पाया जाता) । अलंकारों का समावेश स्वाभाविक रीति से हुआ है । काव्य को व्यर्थ में अलंकारों से लादने का प्रयास नहीं है । अन्य भाषाओं में श्रृङ्गार वर्णन भारतेन्दु जी का सुन्दर हुआ है । समस्या-पूर्तियों तथा अनुवादों में भी श्रृङ्गार का समावेश पाया जाता है ।

(४) चतुर्थ प्रकार के ग्रंथ राजनीतिक, सामाजिक भावनाओं को लिये हुये हैं । राज-भक्ति, देश-भक्ति, सामाजिक कुरीतियाँ आदि इनमें वर्णित हैं उनसे छुटकारा पाने के उपाय भी दिखलाये गये हैं । पाश्चात्य प्रभाव, भारतवासियों की दीन-हीन दशा आदि विषयों से

यह काव्य परिपूर्ण है। राज-भक्ति देशहित के कारण की गई। राष्ट्र भाषा तथा साहित्य-सेवा में रत भारतेन्दु जी को इन ग्रन्थों में हम पाते हैं। स्त्री शिक्षा तथा अन्य इसी प्रकार के विषयों का प्रतिपादन इन ग्रन्थों में प्रधानतया मिलता है।

(५) पञ्चम प्रकार के ग्रन्थों में उनकी स्फुट कविताओं का संग्रह है जिसमें विभिन्न विषयों पर काव्य रचना की है। उर्दू, बंगला, गुजराती, मराठी आदि विभिन्न भाषाओं में यह काव्य मिलता है। संगीत, राग रागिनियाँ, गजलें, लावनियाँ, समस्यापूर्तियाँ आदि श्रृङ्गार राष्ट्रीयता, भक्ति आदि विषयों से परिपूर्ण हैं और इसी के अतर्गत उनके वह अनुवाद भी आ जाते हैं जो अपनी विशेषताओं के कारण मौलिक ग्रन्थ जान पड़ते हैं।

अतएव अब हम संक्षेप में भारतेन्दु जी के ग्रन्थों के विषय में यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि राजनीतिक, सामाजिक धार्मिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों के अनुसार भारतेन्दु जी ने विभिन्न प्रकारों के ग्रन्थों की रचना की। राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रीय काव्य के क्षेत्र में आपने नवीन शैली का बीजारोपण किया और किसी हद तक उसे पल्लवित तथा पुष्पित करने का प्रयास भी किया। गीति तथा भक्ति-कालीन परम्पराओं को बनाए रखते हुये भी नवीन भावनाओं का समावेश आपने अपने काव्य में किया। श्रृङ्गार की विलासिता से वह जनता को दूर रखना चाहते थे। अधःपतन के गर्त से जनता को वह धीरे धीरे निकालना चाहते थे। और इसी से नवीन चेतना तथा नवीन युग के निर्माण का आपने प्रयत्न आरम्भ किया। परिस्थितियों के अनुरूप ही चल कर देश का कल्याण वह भारतीय जनता के जीवन में करना चाहते थे। यद्यपि साहित्यिक परम्परा से वह प्रभावित थे तथापि अचानक ही उसे मिटा देना भी कल्याणकारी नहीं समझते थे। जातीय, धार्मिक भावनाओं से प्रेरित हो कर देश का कल्याण आपने प्रारम्भ किया था। राज भक्ति के साथ ही सरकार की तीव्र आलोचना वह

बराबर किया करते थे। भाषा और शैली में वह सरलता पसन्द करते थे। अलंकारों तथा शब्दों का प्रयोग भी बहुत सीधा-सादा करना उन्हें अधिक रुचिकर था। प्रेम, भक्ति, रसिकता आदि उनकी कविता में टपकी पड़ती है। भारतेन्दु जी का प्रकृति वर्णन श्रृङ्गारिक-काल के कवियों से अधिक सुन्दर हुआ है।

इस परिवर्तन काल में भारतेन्दु जी ने जो कुछ भी लिखा, बहुत सुन्दर लिखा। प्राचीन तथा नवीन दोनों शैलियों पर उनका समान अधिकार था। वे एक उच्च कोटि के कवि, समाज सुधारक तथा देश भक्ति थे, इसमें कोई शंका नहीं कर सकता।

आप ही की प्रेरणाओं विचारधाराओं तथा परम्पराओं से प्रभावित आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में सर्व श्री श्रीधर पाठक, महावीर प्रसाद द्विवेदी, मिश्र-बंघू, हरिऔध, नाथूराम शंकर, मैथिली शरण गुप्त, रामचंद्र शुक्ल आदि प्रकाण्ड पण्डित अवतीर्ण हुये। जिन्होंने हिन्दी साहित्य की अमूल्य सेवायें की और कर रहे हैं। अतएव नवीन युग प्रवर्तक, लोक, जाति और समाज के कल्याण करने वाले, हिन्दी भाषा के अनुपम उन्नायक भारतेन्दु जी हिन्दी साहित्य के वह पुष्प हैं जो सदैव विकसित रहेगा।

{अ} काव्य वर्गीकरण

१ धार्मिक काव्य

१ (अ) सिद्धान्त प्रतिपादक काव्य (वैष्णव धर्म तथा अन्य धर्म) :—

हिन्दी साहित्य के इस नवीन युग में धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलनों का कोई निश्चित तिथि ज्ञात करना बहुत ही दुष्कर कार्य है। किन्तु आंदोलनों का जन्म बंगाल के सन् १८२८ ई० में ब्रह्म समाज की स्थापना से मान सकते हैं। इसी समय से राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों के कारण भारत की सम्यता एवम् सस्कृति में परिवर्तन आरम्भ हो गये थे। इसी धर्म हिन्दू धर्म की नींव को दीमक की भाँति भीतर ही भीतर खोखला कर डालना चाहता था। किन्तु सभी क्षेत्रों के आंदोलनों के प्रभाव से भारतवासियों की आंखें खुलने लगीं। और अपने प्राचीन गौरव की ओर ध्यान आकर्षित हुआ। परन्तु ब्रह्म समाज तथा आर्य समाज जैसी सुधारवादी संस्थाओं के होते हुए भी कुछ महानुभावों ने रूढ़िवादी धार्मिक विचारों से चिपटे रहने की चेष्टा की। निस्संदेह भारतेन्दु जी सनातन धर्म को तत्कालीन विकृत रूप में नहीं बरन् उचित परिवर्तनों के साथ ग्रहण करना चाहते थे। सनातन धर्म की प्राचीन प्रतिष्ठा को वह उसी स्तर पर रखना चाहते थे जिस पर वह कुछ दिन पहले थी। भारतेन्दु जी के प्रश्नों के उत्तर स्वामी दयानन्द जी नहीं दे सके थे। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं लगाया जा सकता कि उन

संस्थाओं की अच्छी बातों के भी वह विरोधी थे। न तो वह प्राचीन धर्म को लकीर के फकीर की भाँति अविश्वास से ग्रहण करते थे और न इन नवीन धर्मों के वे पूर्ण पोषक थे। वह धर्म का सच्चा स्वरूप, उसकी आत्मा, जनता के सम्मुख रखना चाहते थे। साथ ही उनका विचार था कि यदि सनातन धर्म का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया जाय तो उसकी उदारता के कारण अन्य धर्मों की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। यही नहीं, बल्कि यह मूल तथा निर्बल निम्सार नवीन धर्म-समाजों की अतात्त्विकता को भी सिद्ध कर सकता है। इन परिस्थितियों से प्रेरित हो सर्व प्रथम तो उन्होंने सब धर्मों का भली भाँति अध्ययन किया और तत्पश्चात् अनुवाद, छाया अनुवाद तथा मौलिक ग्रन्थों की रचना प्रारम्भ की। बल्लभ संप्रदाय के अनुयायी वैष्णव भक्त श्री भारतेन्दू जी की रुचि बाल्यावस्था से ही धर्म की ओर विशेष थी। आप तो धर्म के तत्व को भली भाँति समझते थे। तथा आपकी नस-नस में भगवान् श्री कृष्ण जी का प्रेम समाया हुआ था। काशी के सुप्रसिद्ध गोस्वामी श्री गिरधर महाराज की कन्या तथा गोपाल मंदिर की अधिष्ठात्री श्रीमती श्यामादेवी से आपको दीक्षा प्राप्त हुई थी। तर्क हीन धर्म श्रद्धा तथा भगवत् प्रेम के आप पक्षपाती थे। पौराणिक सिद्धान्तों, कर्म काण्ड आदि का महत्व भी आप मानते थे। आपने स्वयम् “कार्तिक स्नान” शीर्षक ग्रन्थ में लिखा है :-

“शास्त्र एक गीता परम, मंत्र एक हरिनाम।

कार्य एक पद भजन, देव एक घनश्याम ॥”

किन्तु यह पौराणिक धर्म का बाह्य आवरण उनको धर्म तत्व तक पहुँचाने का साधन मात्र था—केवल यही उनका लक्ष्य नहीं था। आप इसी ग्रन्थ में एक स्थान पर अनन्य कृष्ण भक्ति का परिचय देते हुए लिखते हैं :-

पूजि के कालिहि सत्रु हतौ, कोऊ लक्ष्मी पूजि महाधन पायो।

सेइ सरस्वति पण्डित होऊ, गनेसहि पूजि कै विघ्न नसाओ।

ज्यों हरिचन्द जू ध्याई शिवै, कोऊ चार पदारथ हाथ ही लाओ ।
मेरे तो राधिका नायक ही गति लोक दोऊ रहौ कै नसि जाओ ॥”
“वैशाख माहात्म्य” मे रत्न वर्णन के लाभ बतलाते हुए कहते है :-

“ब्राह्मण गन सों पूछि कै नियम शास्त्र को मान ।

हरिहि नौमि संकल्प करि न्याय समेति विधान ॥”

उपयुक्त दोहे से स्पष्ट हो जाता है कि परम्परागत कर्म काण्ड में आपकी आस्था थी और इसी से आपने “पुराणोपक्रमणिका”, “तदीय सर्वस्व”, “भक्त सर्वस्व”, “भक्ति सूत्र वैजयन्ती” आदि सिद्धान्तवादी ग्रंथों की रचना पौराणिक ग्रन्थों के आधार पर की। वैष्णव सर्वस्व, श्री चतुर्भुज सर्वस्व, रामलीला-श्रुति रहस्य श्री भगवत स्थिति आपके विशेष ग्रन्थ है। हम पहले देख चुके हैं कि सार ग्राहिणी प्रवृत्ति के कारण भारतेन्दु जी अन्य धर्मों से भली वस्तुओं का सदा चयन किया करते थे। यद्यपि सद्यः प्रसून ब्रह्म समाज तथा आर्य समाज में उन्हें विश्वास न था और न जैन धर्म आदि में ही उन्हें पूर्ण आस्था थी। किन्तु इन सब धर्मों को वे कल्याणकारी समझते थे।

“पूजिहो देवी न देख कोऊ किन वेद पुरानन ऊँचे पुकारो ।

काहु सों काम नही बख्ख मोहि सबै अपनी अपनी को सँभारो ।

हो बनिहौं कि नसाइहो या सो यहै मन है हरिचन्द हमारो ।

मानिहौं एक गोपालहि को, नहि और के बाप को यामें इजारो ॥”¹

तथा “पूजि के कालिहि सध्” वाले पदों से यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि वह अन्य धर्मों के विरोधी थे वरन् यह अपने गृहीत मार्गों पर अनन्य आस्था व्यक्त करना ही कवि का उद्देश्य जान पड़ता है। साथ ही उनकी रचनाओं से स्पष्ट होता है कि जो अनेक पुराण कथा, शार्ङ्गिल्य-सूत्र, नारद भक्ति सूत्र आदि तथा इतर धर्म सम्बन्धी जैन कुतूहल आदि ग्रन्थों का रचयिता है वह अन्य धर्मों

का विरोधी कैसे हो सकता हैं ? वह तो स्वयम् लिखते है :-

“अहो तुम बहु विधि रूप धरी ।

जब जब जैसा काम परै तब तैसा भेष धरो ।

कहु ईश्वर कहु बनत अनीश्वर नाम अनेक परो ॥” आदि [जैन कु०]
किन्तु भगवत् प्रेम ही आपका परम धर्म तथा सिद्धान्त था और इसी से “उत्तर भक्त माल” में लिखते हैं :-

“भेटि देव देवी सकल छाँड़ि कठिन कुल रीति ।

छाय्यो गृह में प्रेम जिन प्रगट कृष्ण पद प्रीति ॥”

भक्त प्रवर बल्लभ जी को वे स्वयम् भगवान का ही स्वरूप मानते हैं ।

“हम तो श्री बल्लभ ही को जानै ।

सेवत बल्लभ पद पंकज को बल्लभ ही को ध्यावै ।

हमरे मातु पिता गुरु बल्लभ और नही उर जानै ।

हरीचंद बल्लभ पद बल सो इन्द्रहु को नहि मानै ॥” [प्रेम मालिका]
यद्यपि आप कहीं-कहीं पर श्री कृष्ण जी को सखा भाव से भी देखते है-“सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधारानी के” कहने से यह भाव स्पष्ट है, किन्तु प्रधानतः आप राधा-कृष्ण को गुरु रूप में ही मानते थे ।
जैसा निम्न छंद से प्रकट होता है :-

“भजौ तो गुपाल ही को सेवौ तो गुपाल एक,

मेरो मन लाग्यो सब भाँति नन्द लाल सों ।

मेरे देव देवी गुरु माता पिता बन्धु इष्ट,

मित्र सखा हरि, ना तो एक गोप लाल सों ।

हरी चन्द और सो न मेरो सम्बन्ध बन्ध कछ,

आसरो सदैव एक लोचन विसाल सो ।

भागौ तो गुपाल सो न भागौ तो गुपाल ही सों,

रीझौ तो गुपाल ही पै खीजी तो गुपाल सों ॥”

[विनय प्रेम पचासा]

वैष्णव धर्म को वह विश्वास मूलक मानते थे। सिद्धान्तों को इसमें वे प्रमाण रूप से नहीं रखना चाहते। उन्होंने स्वयम् लिखा है कि “हम कर्म मार्ग को सर्वथा व्यर्थ समझते हैं। परन्तु जिस कुल व जाति में हम उत्पन्न हैं उसके लोगों को दुःख होगा इस ध्यान से हम यावत् कर्म करते हैं।”

यही नहीं, सिद्धान्त ग्रन्थों के प्रणयन द्वारा यह स्पष्ट हो गया कि हमारा धर्म सर्वश्रेष्ठ है, यदि बाह्य तथा अन्तर दोनों विशुद्ध हों। ‘तदीय सर्वस्व’ की भूमिका में आपने लिखा है कि ‘मूल धर्म को छोड़ कर उपधर्मों में आप्रह ने भारतवर्ष से वास्तविक लोप कर दिया’..... गौण कर्म तो मुख्य हो गए और मुख्य वस्तु गौण हो गई। इसी से सारा भारतवर्ष भगवद् विमुख होकर छिन्न-भिन्न हो गया जो कि इसकी अवन्नति का मूल कारण हुआ। धर्म हमारा ऐसा निर्बल व पतला हो गया कि वह केवल स्पर्श से वा एक चिल्लू पानी से भर जाता है। कच्चे गले-सड़े सूत वा खीटी की दशा हमारे धर्म की हो गई है।..... या तो ईश्वरवादी हिन्दू समाज से सम्पूर्ण बहिष्कृत हो जाएंगे या कर्म मार्ग से ऐसे दब जाएंगे कि नाम मात्र के भक्त रहेगें।”

भारतेन्दु जी ने यह सब यों ही नहीं लिख डाला। सारे वेद पुराण आदि का अध्ययन करके उनके प्रभाव से इस प्रकार ग्रन्थों की रचना की गई है। पहले कह चुके हैं कि भारतेन्दु जी अन्य धर्मों तथा देवी देवताओं के विरोधी नहीं थे। जिस प्रकार से तुलसी दास जी ने रामोपासक होते हुए उदारता पूर्वक कृष्ण, सूर्य, गणेश, गंगा, शिव आदि सभी की वन्दना की है, भारतेन्दु जी ने भी उसी प्रकार अन्य देवताओं के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित की है। राम और कृष्ण तो वैष्णवों के लिए प्रायः समान हैं ही। आदि शक्ति सीता माता की स्तुति भी इस प्रकार की है :—

“अरे मन भजले सिय पद पंकज।”

धर्म के संस्थापक महावीर स्वामी के लिये कहते हैं :—

“जैन धर्म को प्रगट कियो तुम दया धर्म सिंगरो ।”

‘गंगा स्तुति’ में “गंगा पतितन को आधार”, “जमुना तुम हरि को अति प्यारी ।” आदि के द्वारा उनका अन्य देवताओं में विश्वास व्यक्त होता है । आपको जगत में सत्यता का आभास मिलता था और जगत ब्रह्ममय दिखाई पड़ता था । वह लिखते हैं” :— बिना शुद्ध प्रेम के न लोक है न परलोक । जिस संसार में परमेश्वर ने उत्पन्न किया है, जिस जाति वा कुटुम्ब से तुम्हारा सम्बन्ध है और जिस देश में तुम हो उससे सहज सरल प्रेम करो और अपने परम पिता, गुरु, परमपूज्य परमात्मा प्रियतम को केवल प्रेम से ढूँढ़ लो, बस और कोई साधन नहीं है ।

यही दया भाव, शील, सत्य, आपका मुख्य धर्म है । अहिंसा, आडम्बर-हीनता, पवित्र आचरण इनके सिद्धान्त हैं और प्रेम मूर्ति राधा कृष्ण इनके उपास्य देव हैं ।

(ब) भक्ति विषयक काव्य (सात्विक तथा श्रृंगार भक्ति):—

प्रारम्भ ही से हम देखते आ रहे हैं कि भारतेन्दु जी भक्ति तथा भूङ्गार दोनों प्रकार की भावनाओं की ओर विशेष रुचि रखने वाले थे । आप के ग्रंथों के अवलोकन से विदित होता है कि आप प्रेमा भक्ति के अनुयायी थे । कृष्णोपासक वैष्णव संप्रदाय के उपासक होने के कारण श्री राधाकृष्ण की प्रेम लीला सम्बन्धी कविता करते । भारतेन्दु जी के ग्रंथों में सात्विक तथा श्रृंगारात्मक भक्ति साथ-साथ पाई जाती है । एक ही ग्रन्थ में कुछ रचनायें दैन्य, दास्य आदि भावों से पूर्ण सात्विकता से ओतप्रोत हैं और उसी में अन्य स्थल पर दाम्पत्य रति विषय उपासना का समावेश भी पाया जाता है । अतएव यह कहना कि उनका अमुक ग्रंथ केवल सात्विक भावनाओं से पूर्ण है और अमुक केवल श्रृंगार भावना से, उचित न होगा । अतएव हम यहाँ केवल उनकी विभिन्न काव्य धाराओं का ही उल्लेख करेंगे । सात्विक भक्ति विषयक कविताओं में भारतेन्दु जी की सात्विकता कहीं-कहीं

पर सूर आदि के समान ही दृष्टिगत होती है। अपनी प्रार्थना में कवि अत्यन्त उत्कण्ठा लेकर अभिलाषा करता है कि कब उसे जगन्माता राधा के चरणों में आश्रय मिलेगा:—

“श्री राधे मोहिं अपनो कब करिहौ ।

जुगल रूप रस अमित माधुरी कब इन नैनन भरिहौ ।

कब या दीन हीन निज जन पै ब्रज को वास विहरिहौ ।

हरी चन्द कब भव बूढ़त तैं भुज धरि धाइ उबरिहौ ।

—[प्रेम फुलवाड़ी]

अनन्त प्रतीक्षा से वह व्याकुल होकर पुकार उठता है:—

“अहो हरि बस अब बहुत भई ।

अपनी दिसि बिलोकि करुना निधि कीजै नहि नई ।

जो हमरे दोसन को देखी तो न निबाह हमारी ।

करिकै सुरत अजामिल गज की हमरे करम बिसारी ।

अब नहि सही जात कोऊ बिधि धीर सकत नहि धारी ।

हरीचन्द को बेगि धाइ कै भुज भरि लेहु उबारी ।

—[प्रेम फुलवारी]

यह आत्म समर्पण कवि की अनन्य श्रद्धा का परिचायक है। वास्तव में वह अपने उपास्य में इतना तल्लीन हो चुका है कि उसका अपमान उसे स्वयम् अपना अपमान लगता है। तभी तो सेवक को भगवान की प्रतिष्ठा का इतना ध्यान है। वह कहता “नहि तो हँसी तुम्हारी हूँ है”, “फल है अपजस तुम्हरो भारी”, “सँमारहु अपने को गिरधारी।” इत्यादि।

फिर भी उन पर कोई भी प्रभाव न पड़ने पर वह आत्म-निवेदन करता है “पियारे क्यों तुम आवत याद। छूटत सकल काज जग के सब मिटत भोग के स्वाद।”—[प्रेम फुलवारी], साथ ही—“नखरा राह राह को नीकी” कह कर कवि भगवान को उपालम्भ की सहायता से अपनी ओर आकर्षित कर लेना चाहता है और अपनी दीनता में

“खुटाई पोरहि पोर भरी” भी बतलाता है। इस प्रकार शुद्ध भक्ति के विभिन्न दृश्य हमें ‘प्रेमाश्रुवर्ण’, ‘प्रेम प्रलाप’, ‘प्रेम माधुरी’, ‘प्रेम मालिका’, ‘प्रेम तरंग’, ‘प्रेम सरोव’, ‘किनय प्रेम पचासा’, ‘देवी छत्र लीला तथा संगीत वाले पदों में मिलते हैं। स्थानाभाव से उन सब के उदाहरण यहाँ विस्तार से नहीं दिये जा सकते। भारतेन्दु जी की सात्विकता में सरसता है और सरलता है। तन्मयता के साथ-साथ दास्य सख्य भावों का वर्णन बहुत मार्मिक हुआ है।

बाल्यावस्था से ही भारतेन्दु जी की रुचि श्रृंगार सबन्धी कविता की ओर थी। किन्तु भक्ति भी इनके जीवन का प्रमुख अंग थी। फल स्वरूप इनकी श्रृंगारिक कविता जैसा कि कहा गया है भारतेन्दु जी के ग्रंथों को निश्चित रूप से सात्विक अथवा श्रृंगारिक श्रेणी में विभाजित करना सम्भव नहीं है। फिर भी राधाकृष्ण की लीला सम्बन्धी अथवा दाम्पत्य रति सम्बन्धी भाव भक्ति की धारा पर भी दृष्टिपात कर लेना अनुचित नहीं है। क्योंकि उनकी भक्ति सम्बन्धी कविता में इसका एक बड़ा अंश है। ‘प्रेम माधुरी’ इनके ऐसे काव्यों में श्रृंष्ठ है:—

“बार बार पिय आरसी मत देखहु चित लाय।

सुंदर कोमल रूप पै दीठ न कहूँ लगि जाय ॥

देखन देहुँ न आरसी सुंदर नंद कुमार।

कहुँ मोहित हूँ रूप निज मति मोहि देहु बिसार ॥”

[प्रेम माधुरी

भारतेन्दु जी की रागात्मक आत्मीयता तथा आत्मनिवेदन का स्पष्टीकरण दूसरी एक सवय्या में भी है:—

“राखति नैनन मैं हिय मैं भरि दूरि भये छिन होत अचेत हूँ।

सौतनि की कहै कौन कथा तसखीरहुँ सों सतराति सहेत है।

लाज भरी अनुराग भरी हरि चन्द सबै रस आपुर्हि लेत है।

रूप सुधा इकली ही पियै पियहूँ को न आरसी देखन देत है ॥”

[प्रेम माधुरी]

‘सतसई श्रृंगार’ नामक ग्रंथ में भी इस प्रकार के भक्ति भाव का बाहुल्य है। इसमें बिहारी के दोहों पर कुण्डलियाँ बनाई गई हैं। दोहों के विषय में कुछ कहना तो व्यर्थ ही है। किन्तु भारतेन्दु जी ने उन्हीं भावों को अपनी कुण्डलियों में किस प्रकार विकसित किया है, यही हमें देखना है।

“सीस मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल ।

इहि बानिक मो मन बसो सदा बिहारी लाल ॥

सदा बिहागी लाल बसो बाँके उर मेरे ।

कानन कुंडल लटकि निकट लटकावलि घेरे ॥

श्री हरिचंद त्रिभग ललित मूरति नटवर सी ।

डरी न उर से नेकु आज कुंजन जो दरसी ॥”

यहाँ पर सीस मुकुट वाले को जो अलंकृत छबि-माधुरी दोहे के संक्षिप्त गुण के कारण शेष रह गई थी उनकी पूर्ति भारतेन्दु जी ने बड़ी कुशलता से की है। उनके चित्र में स्पष्टता तो आ ही जाती है साथ ही “इह बानिक” का स्पष्टीकरण “बाँके” “त्रिभग” शब्दों से बहुत कुछ हो जाता है। इसी प्रकार अन्य स्थानों पर लीला सम्बन्धी काव्य में विरह, सयोग आदि का बहुत सुन्दर वर्णन मिलता है। सर्वव्या तथा लावनी जैसे प्रवाह पूर्ण छन्द में आपके यह भाव खूब निखर उठते हैं। उदाहरण के लिए दो एक लावनी देखिए:—

“हटरी सजि कै राधारानी मोहन पिय को लै बैठावत ।

फूल माल पहिराय विविध विधि भांति भांति के भोग लगावत ॥

बीरी देत आरती करिकै करत निछावर बसन लुटावत ।

इक टक निरखि प्रान पिय मुख छबि जीवन जनम सुफल कर पावत ॥”

अथवा:—

“जग मग दीप प्रकाश बदन दुति रतन अभूखन मिली मन भावत ।

हाट लगाय प्रेम की मोहन मन के बदले सौज देखावत ॥

पाँसा खेलत हँसत हँसावत जानि बूझि पिय अपुन हरावत ।
 हरीचन्द पिय प्यारी मिलिकै एहि विधि नित त्यौहार मनावत ॥^१
 महाकवि जयदेव की भावधारा तथा शैली दोनों से प्रभावित
 होकर भारतेन्दु जी हिन्दी और संस्कृत दोनों में लिखते हैं:—

“हरि हरि हरि रिह विहरत कु जे मन्मथ मोहन बनमाली ।
 श्री राधाय समेतो शिखि शेखर शोभा शाली ।
 गोपीजन विधुवदन वनज वन मोहन मत्ताली ।
 गायति निज दासे ‘हरिचन्दे’ गल जालक माया जाली । [वर्षा वि०]
 हरि हरि घोर समीरे बिहरति राधा कालिन्दी तीरे ॥”—आदि
 संस्कृत की लावनी में वह लिखते हैं:—

“कुंजं कुंजं सखि सत्वरम् ।
 चल चल दयितः प्रतीक्षते त्वां तनोति बहु आदरम् ।
 सर्वा अपि संगता
 नो दृष्ट्वा त्वाम् तामु प्रिय सखि हरिणा डहम् प्रेषिता ।
 मानं त्यज वल्लभे ।”.....आदि—[संस्कृत लावनी]
 इसी प्रकार उर्दू की शैली में भी इसी श्रृंगारिक भक्ति का
 प्रदर्शन है:—

“श्री राधा माधव जुगल चरन रसका अपने को मस्त बना ।

पी प्रेम पिआला भर भर कर कुछ इस मय का भी देख मजा ॥”

[फूलों का गुच्छा]

इस प्रकार यह श्रृंगार-भक्ति हिन्दी, उर्दू, संस्कृत आदि सब
 भाषाओं तथा शैलियों में प्रदर्शित की गई है । भारतेन्दु जी का काव्य
 हिन्दी साहित्य में विशेष कर अपने श्रृंगार, भक्ति तथा राष्ट्रीय भावों
 के लिये महत्वशाली माना जाता है । एक ओर भक्ति श्रृंगार से
 प्रभावित सरल तथा भावुकता पूर्ण ब्रजभाषा काव्य तथा दूसरी ओर
 कृष्णा पूर्ण भारत की दुर्दशा वर्णन खड़ी बोली आदि में बहुत मार्मिक
 तथा लोकप्रिय है । वैष्णव संप्रदाय की परम्परा के आधार पर

भारतेन्दु जी ने अपने श्रृंगार भक्ति के काव्य में श्री मद्भागवत में वर्णित कथाओं और लीलाओं का आश्रय ग्रहण करके अपने को कृष्ण के रूप-सौन्दर्य में निमग्न कर दिया है ।

१ श्रृंगार काव्य

[शृङ्गार काव्य, समस्या पूर्ति, अन्य भाषाओं का काव्य, तथा अनुवाद]

ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार तथा नीव की दृढ़ता के साथ-साथ कवियों को राजाश्रय की प्राप्ति में कमी होती जाती थी । भारत की विभिन्न परिस्थितियों तथा पाश्चात्य प्रभाव के कारण जनता एवम् कवियों का स्थान न तो पूर्ण रूप से भक्ति ही की ओर आकर्षित था और न घोर श्रृंगारमयी रीति कालीन कविता की ओर ही । आर्थिक कष्टों को देख कर कवियों का ध्यान उधर से उचट गया । किन्तु परम्परा से चली आती हुई परिपाटी इतनी शीघ्रता से नहीं दूर होती । इसी कारण इस समय की कविता दो धाराओं में विभक्त हो गई । एक तो प्राचीन परिपाटी पर आश्रित तथा दूसरी नवीन भावनाओं से ओत प्रोत । यद्यपि रीति काल में श्रृंगार तथा अन्य उच्च भावनाओं से साहित्य परिपूर्ण हो चुका था वरन् अब उन पुराने विषयों का पिष्ट पेषण भी विशेष वाञ्छनीय नहीं था । इसी कारण इस नवीन युग में उन प्राचीन विषयों को लेकर कवियों को अपना कौशल दिखलाना सरल कार्य न था । फिर रस तथा अलंकारों से अलंकृत कलात्मक रचनाओं के पश्चात् अब सरल तथा अलंकारों के भार से मुक्त सौन्दर्यपूर्ण प्रेम व्यापारों का चित्रण सम्मुख आना प्रारम्भ हो गया । भारतेन्दु जी उपर्युक्त परिवर्तनों से तटस्थ न रह सके । अतएव राधाकृष्ण लीलाओं के हृदय पक्ष को लेकर उन्होंने मर्मस्पर्शी मधुर काव्य रचना प्रारम्भ की । राधाकृष्ण की रति-केलि, दान लीला, छद्मवेष लीला तथा अन्य लीलाओं में मनोहर वर्णन किया है । साथ

ही नखशिख वर्णन, रूप, सुकुमारता आदि के भी चित्रण की बहुलता रखती; अधिकतर कवियों की भाँति उन्होंने श्रृंगार की छीछालेदर नहीं की। उनमें सच्चे प्रेम तथा सरलता की विशेष झलक मिलती है। इस ऐहिक प्रेम में प्रेमी एवम् प्रेमिकायें सम्य तथा शिष्ट हैं। वैसी नहीं जैसे कि रीति कालीन कुछ कवियों के नायक-नायिका विलासिता में सराबोर होकर भी कभी-कभी लोक लज्जा का भी ध्यान नहीं रखते। द्वेष, वैमनस्य, आदि का स्पर्श भी हम आपके काव्य में नहीं पाते। यद्यपि चमत्कार तथा अन्य गुणों की दृष्टि से वह कवितायें सर्वोत्तम नहीं कही जा सकती किन्तु वह उनकी अपनी शैली तथा सम्पत्ति है। समय को देखते हुये उसे कोई भी न ढाँपा सका। श्रृंगार काव्य के वर्णन में भारतेन्दु जी ने कवित्त, सर्वव्या, बरव, दोहा, सोरठा, चौपाई, छप्पय, मत्तगयन्द आदि छन्दों का प्रयोग किया है। यह श्रृंगार रस के लिये बहुत ही उपयुक्त छन्द हैं। साथ ही उर्दू साहित्य के प्रभाव के कारण इस श्रृंगार का निरूपण गजल तथा शेरों आदि में भी हुआ है। कजली, मल्हार तथा उपयुक्त राग-रागिनियों में काव्य बहुत ही सुन्दर निखर आया है।

हम भारतेन्दु जी के काव्य को दो शाखाओं में विभाजित कर चुके हैं। प्राचीन परिपाटी का श्रृंगार, भक्ति विषयक काव्य तथा नवीनता से प्रभावित खड़ी बोनी तथा राष्ट्रीयता सम्बन्धी। अतः हम कह सकते हैं कि आप में एक उपयुक्त साहित्यिक सगम के दर्शन होते थे जहाँ प्राचीन परिपाटी की धारा में नवीन स्रोत का उद्गम तथा सम्मिश्रण है। उस श्रृंगारिक काव्य के पोषक भारतेन्दु जी का जीवन कवि समाज और ऐसे कवि समाज में व्यतीत हुआ था जो प्राचीन परिपाटी के पोषक थे। वह दिन रात कवियों की संगति में बैठे रहते थे। अनेक कवि समाजों के प्रतिष्ठापक थे और समस्यापूर्ति उनका एक प्रिय विषय था। इन पूर्तियों में कहीं-कहीं पर आपका श्रृंगार अवश्य सीमा का उल्लंघन कर गया है किन्तु वह प्रायः इस कारण कि

नमस्यायें ही ऐसी थी जिनमें उदात्त श्रृंगार का वर्णन था । अन्यथा आप के अधिकतर श्रृंगार काव्य में विलासिता का समावेश बहुत ही अल्प मात्रा में प्राप्त होता है । 'प्रेम माधुरी', 'प्रेम तरंग', 'प्रेम प्रलाप', 'प्रेम फुलचारी' आदि में अत्यन्त सुन्दर शिष्ट, पद, सवय्या तथा कवित्त है । स्फुट रचनाओं में भी श्रृंगार रस निरूपण सुन्दर है । भाषा सरल तथा सुबोध है । एक उदाहरण में नेत्रों की आकुलता, दर्शन पिपासा का सुन्दर वर्णन है:—

‘एक ही गाँव में बास सदा घर पास इहो नहि जानती हैं ।
पुनि पाँचयें, सातयें आवत जात की आस न चित में आवती हैं ।
हम कौन उपाउ करै इनको हरिचन्द महा हठ ठानती हैं ।
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखियों दुखियाँ नहि मानती हैं ।’
[प्रेम माधुरी]

अथवा निराश प्रेम का अन्तिम निश्चय भी अत्यन्त करुण रूप में चित्रित है:—

“धिक देह और बेह सबै सजनी जिहि के बस नेह को दूटनो है ।
उन प्रान पियारे बिना इहि जीवहि राखि कहा सुख लूटनो है
हरिचन्द जू बात ठनी सो ठनी नित के कलकानिते छूटनो है
तजि और उपाव अनेक अरी अब तो हमको विष घूटनो है ।’
[प्रेम माधुरी]

रीति कालीन भावनाओं के प्रभाव का भी एक उदाहरण दे देन अनुपयुक्त न होगा । कहना न होगा कि यह उदात्त श्रृंगार बिल्कुल रीति काल के प्रभाव स्वरूप प्रदर्शित हुआ है:—

“आई केलि मन्दिर में प्रथम नबेली बाल,
जोरा जोरी पिय मन मानिक छुड़ाये लेति ।
सी सी बार पूछे एक उत्तर मरु कै देति,
घूँघट के ओट जोति मुख की दुराये लेति ॥
चूमन न देती हरिचन्दै भरी लाज अति,

सकुचि सकुचि गोरे अंगहि चुराये लेति ।
गहतहि हाथ नैन नीचे किए आँचर मे,
छबि सों छबीली छोटी छातिन छिपाये लेत ॥”

[प्रेम माधुरी]

उर्दू का प्रभाव भी उनके पदों पर बहुत पड़ा और वे नि का स्पष्ट वर्णन इस पद में है:—

“सजन छतियाँ लिपटा जा रे ।

दोउ नैन जोरि, कछु भौह मोरि, झुक भूमि चूमि—

सुख कै झकोरि आदि [प्रेम तरंग]

किन्तु परकीया प्रेम का वर्णन भारतेन्दु जी उपयुक्त नहीं समझते थे । उनके वर्णन या तो गोपी कृष्ण के वार्तालाप के रूप में रखे गये हैं और या स्वकीया नायिकाओं का सात्त्विक प्रेम अपने प्रियतम के प्रति वर्णित है । इस प्रकार के बहुत से वर्णन लोक प्रिय गीतों के रूप में हैं:—

“आजु की रात न जाओ सँझा मेरी बतियाँ मानो ।”

[प्रेम तरंग]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इस श्रृङ्गार विषयक कविता में तथा रीति कालीन कविता में कुछ विशेष अन्तर नहीं है । हाँ, विलासिता का नग्न नर्तन यहाँ नहीं है जो उस काल की विशेषता थी । साथ ही काव्य कला, अलंकारिता तथा व्यर्थ की अस्वाभाविकता से भी मुक्त है । भारतेन्दु जी इसके सच्चे तथा परमोत्तम उदाहरण हैं । कवि समाज में उस समय जो समस्यापूर्तियाँ हुआ करती थी उनकी शैली कवित्त और समस्या की ही थी । अतः भारतेन्दु जी ने भी इन्हीं छन्दों में अपनी समस्या पूर्तियाँ की । यह समस्यायें अधिकतर श्रृङ्गारिक ही होती थी । एक बार काशी दरबार में किसी महानुभाव के यह कहने पर कि “कोई पुरानी कविता होगी” भारतेन्दु जी ने तुरन्त ही आठ दस पूर्तियाँ करके सुना दीं और बोले “क्यों,

यह भी पुरानी हैं ?” और अन्त में महाराज के रोकने पर ही शान्त हुये । आशु कवित्व शक्ति में श्रृंगार रस की समस्या पूर्तियाँ बहुत सुन्दर हुई हैं । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली के स्फुट ग्रंथ में समस्या पूर्तियाँ सगृहीत हैं । रस की दृष्टि से इसकी अधिकतर पूर्तियाँ श्रृङ्गार विषयक हैं । इसमें कुछ उर्दू की भी श्रृङ्गारिक कविता सगृहीत हैं जिसका हम आगे चलकर अलग उल्लेख करेंगे । श्रृङ्गार रस की भावनाओं के साथ उसका परिचय यहाँ प्राप्त करना होगा । केवल श्रृंगार के अन्तर्गत हम उस पर एक दृष्टिपात भर यहाँ कर लेंगे । समस्या पूर्ति में कवि ने प्रायः परंपरागत शास्त्रीयता का पालन करने का प्रयत्न किया है । नायिका भेद, संचारी, अनुभाव आदि का प्रदर्शन प्रचुरता के साथ किया गया है । चित्रण की दृष्टि से “क्यों प्यारी फिरत दिवानी सी” की समस्यापूर्ति में इस तरह के प्रयोग देखे जा सकते हैं । उदाहरणार्थः—

“बन बन पात पात करि डोलत बोलत कोकिल बानी सी ।
मूँदि मूँदि दृग खोलि खोलि कै कहूँ रहत ठहरानी सी ।
उलकति झुकति जमी सी सब दिन मोहन हाथ बिकानी सी ।
धीरज धरि बलि गई अरी क्यों प्यारी फिरत दिवानी सी ॥

[स्फुट काव्य]

उक्त छन्द में वियोग की अनेक दशाओं तथा संचारियों का प्रदर्शन हो जाता है । नायिका का प्रत्येक स्पन्दन तथा आन्तरिक एवम् बाह्य लक्षणों का वर्णन भी दर्शनीय है । किन्तु प्रेम की बावली नायिका का भी वर्णन देखियेः—

“मौन रहत कबहूँ कबहूँ तू बोलत अलबल बानी सी ।
ठगी डगी रस पगी श्याम रत लगी कबहूँ अकुलानी सी ।
तन की सुधि गुरुजन की मैं बिनु हरीचन्द रससानी सी ।
काके मदमाती डोलत क्यों प्यारी फिरत दिवानी सी ।”

[स्फुट कवितायें]

प्रेम की इस तन्मयता में भी कवि की दृष्टि संचारी भावों की सहायता से ही रस परिपाक तक पहुँचती है। यही छटा हमको दूसरी समस्या पूर्ति “ग्रीष्मै प्यारे हिमन्त बनाइये” में भी मिलती है।

“दीनहूँ मैं कबों कीजै कृपा उजरी कुटी में रहूँ आइ बसाइये।

राखिये मान गरीबिनी हूँ को दयानिधि नाम की लाज निभाइये।

दे अघरामृत पान पिया हरिचंद जू काम को ताप मिटाइये।

मेरे दुखै सुख कीजिये पीतम ग्रीष्मै प्यारे हिमन्त बनाइये ॥

[स्फुट कवितायें]

उक्त छन्द में कवि शास्त्रीयता को छोड़कर अधिक ऊँची भावुकता की भूमि को ग्रहण करता है। ब्रजभाषा की मधुरता तथा सरसता के साथ भारतेन्दु जी ने अपनी पूर्तियों में सहृदयता का ध्यान विशेष रक्खा है जिसके कारण उनका काव्य विशेष हृदय ग्राही है। उर्दू की कविता में भी “बुलबुल को बांधिए तो रगे गुल से बांधिए” तरह पर आपने लिखा:—

“जुल्फों को लेके हाथ में कहने लगा वह शोख।

गर दिल को बांधना है तो काकुल से बांधिये ॥

[स्फुट कवितायें]

स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में भी आप परम्परा के अनुयायी हैं। अन्य भाषाओं में भी आपने श्रृंगार प्रधान कविता की है। ये भाषायें उर्दू, पंजाबी, मारवाड़ी, संस्कृत आदि हैं। समस्या पूर्ति के अतिरिक्त उर्दू में प्रेम सम्बन्धी काव्य की रचनायें मिलती हैं जो परंपरागत हैं। प्रकार पंजाबी, बंगाली, संस्कृत, मारवाड़ी आदि में भाषा को छोड़ कर विशेष कोई नवीनता नहीं मिलती। विषय प्रायः श्रृंगारिक हैं और हिन्दी के विषयों से मिलते जुलते हैं। उर्दू में आप लिखते हैं:—

“दिल मेरा तीरे सितमगर का निशाना हो गया।

आफते जाँ हक में मेरे दिल लगाना होगया ॥

[स्फुट कवितायें]

दूसरे स्थान पर फिर लिखते हैं:—

“कई दिन से खयाले गेसुये जाना न रहता है ।
परीशा रात दिन यारब दिले दीवाना रहता है ॥
बरगे चश्में नरगिस दीदए मस्ताना रहता है ।
हमेशा साकिया गरदिश मे यों पैमाना रहता है ॥ अदि—
[स्फुट कवितायें]

भारतेन्दु जी की पंजाबी भाषा के श्रृंगार रस का एक उदाहरण भी यथेष्ट होगा:—

‘तै डा होरी खेल मैडे जीडनूँ भाँवदा ।
तू वारी कोई दी सरम न करदां बुरी वे गालियाँ गाँवदा ।
पाप अबीर नैन बिच साँडै बसी निलज बजाँवदा ।
हरीचद मैंनूँ लगी लड़ तैडी तू नहि आस पुराँवदा ।”
[होली]

मारवाड़ी भाषा पर अधिकार तो आपको था ही । यहाँ एक घमार देखिये:—

“साडूला म्हारा मीजै न डारो रंग ॥ ध्रु० ॥
मति नाखी गुलाल आँखिन में सीखा छौकिन रौढ़ ।
नाम लेइ म्हारो मति गावो गारी सँग बजाइ कै चंग ।
‘हरिचन्द’ मदमात्यो मोहन मति लागो म्हारे संग ।” आदि
[होली]

और भी:—

“स्यामा जी देखो आवे के धारो रसियो ।
कछु गातो कछु सैन बतातो कछु लखिकेँ हँसियो ।
मोर मुकुट वाके सीस सोहरणों तीपम्बर कटि कसियो ।
‘हरीचन्द’ पिय प्रेम रंगीलो था के मन बसियो ॥” आदि
[प्रेम मालिका]

बंगला भाषा में श्रृङ्गार का वर्णन भी बहुत उत्तम हुआ है :-

“निमृ निशीथे सई ओ वांशी बाजिल ।
 पूरित करया बन, भेदिया गगन घन ॥
 जे काँ पाइया सभौरन मधुर रवे गाजिल ।
 झकारिया तसगन एक तान साजिल ॥
 हरिश्चन्द्र श्याम-वंशी-स्वर कामदेव फाँसी ।
 कुल बधू सुनायाई आर्य्य पथ त्याजिल ॥” [प्रेम तरंग]

शृङ्गार काव्य की हिन्दी भाषा की भाँति सफल और प्रौढ़ रचना यद्यपि इन भाषाओं में नहीं हुई तथापि भारतेन्दु जी की शृङ्गार भावना इनमें पूर्ण रूप से सुरक्षित है। भारतीय साहित्यों में शृङ्गार साहित्य जितना संस्कृत में है उतना और कहीं नहीं। संस्कृत का प्रभाव भारतेन्दु जी पर बहुत पड़ा था और इसी के आधार पर आपने लावनी तथा अन्य श्लोकों की रचना की। यह रचनाएँ कुछ तो राजभक्ति विषयक हैं और कुछ शृङ्गार विषयक। आपकी “संस्कृत लावनी” स० १९३१ में प्रकाशित हुई थी। भारतेन्दु जी पर महाकवि जयदेव का प्रभाव था। ‘गीत गोविन्द’ की भावनाओं का चित्रण आपकी इस लावनी में है। किन्तु अपनी शैली के कारण उसका सौन्दर्य ही दूसरा हो जाता है। “संस्कृत की लावनी” का उदाहरण नीचे दिया जाता है :-

“मुञ्च मानं, मानय वचनम्,
 विलम्बं मा कुरु, कुरु गमनम्,
 प्रियाङ्गे प्रिये! रचय शयनम्,
 सुतनु तनु सुखमय मालिजनम्,
 दासौ दामोदर हरिचंदौ प्रार्थयतस्ते वरम्
 वरय राधे त्वं राधावरम्।

चल चल दयितः प्रतीक्षते त्वां तनोति बहु आदरम् ॥”

स्वाभाविक प्रतिभा के कारण ही कवि सरलता और मधुरता के साथ संस्कृत में भाव प्रदर्शित कर सकता है।

३ राष्ट्रीय काव्य

(राज भक्ति और राष्ट्रीयता तथा देश प्रेम)

राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आर्थिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए भारतेन्दु जी ने अपनी कल्याणमयी वाणी द्वारा भारतीय समाज के प्रत्येक अंग को नवजीवन प्रदान करने की चेष्टा प्रारम्भ की। तत्कालीन परिस्थितियों को सभालने का एक मात्र साधन भारतेन्दु जी ने राजा और प्रजा के सम्बन्ध को दृढ़ करना ही समझा और इसमें इनकी राजनीतिज्ञता का अच्छा परिचय मिलता है। आप शान्ति पूर्वक भारतवासियों के हृदय में उनके अधिकारों का ज्ञान उत्पन्न करके तथा अन्य कुरीतियों को दूर करके स्वतंत्रता के पथ पर ले जाना अधिक उचित समझते थे। राजा तथा प्रजा के बीच में इस अपरिपक्व परिस्थिति में द्वेष का बीज बपन करना उचित नहीं समझते थे।

राज भक्ति विषयक भारतेन्दु जी का काव्य यह स्पष्ट करता है कि वह राजा से प्रजा के दुःख, भारतीय दुदशा, तथा भारत की सामाजिक दुर्व्यवस्था का वर्णन करके उसकी सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। भारतेन्दु जी की राज भक्ति का तात्पर्य यह नहीं था कि वह अपने स्वार्थ, अपनी ख्याति के हेतु सरकार की चापलूसी करें। यदि ऐसा होता तो राजभक्ति विषयक काव्य में केवल राजा की प्रशंसा की दुन्दुभी ही बजी होती। किन्तु ऐसा न होकर उनकी सभी राजभक्ति विषयक कविताओं में भारत की सामाजिक, आर्थिक आदि दयनीय दशाओं का वर्णन पाया जाता है। भारतवासियों को अपनी पूर्व कथा, पूर्व गौरव का स्मरण भी दिलाया जाता है।

स्पष्टवादी भारतेन्दु जी सबकी भूलों को जनता के सम्मुख रखने में कदापि नहीं हिचकते थे। राजभक्त होते हुए भी वह सरकार की कमजोरियों एवं दोषों को स्पष्ट कह देते थे।

भारतेन्दु जी का राष्ट्रीय काव्य दो विभागों में विभाजित किया जा

सकता है। प्रथम राजभक्ति विषयक और दूसरा राष्ट्रीयता तथा समाज सुधार विषयक। राजभक्ति विषयक काव्य में सर्व प्रथम काव्य की रचना ड्यूक ऑफ एडिनबरा के भारत में शुभागमन पर भारतेन्दु जी की थी। उस दिन ग्रहण रात्रि होने के कारण आपने ड्यूक महोदय को चन्द्र से भी अधिक शक्ति शाली ठहराया। वह लिखते हैं :-

“वाको जन्म जल, या को रानी-कूख सागर तें,
वह तो कलंकी, या में छीट हूँ न आई है।
वह नित घटे, यह बाढ़े दिन दिन, वह,
विरही दुखद, यह जग सुखदाई है।
जानि अधिकाई सब भांति राजपुत्र ही की मैं,
गहन के मिस यह मति उपजाई है।
देखि आजु उदित प्रकास मान भूमिचन्द,
नभ ससि लाज मुख कालिमा लगाई है ॥”*

“सुमनाञ्जलि” में आपने बहुत बड़े-बड़े रचनाकारों की रचनाएँ संगृहीत करके ड्यूक महोदय को समर्पण की थी। इस पर आपको पारितोषिक भी प्राप्त हुआ था। “प्रिन्स आफ वेल्स के रोग पीडित होने पर” रोग-निवारणार्थ आपने इस प्रकार ईश्वर से प्रार्थना की थी :—

“हम हैं भारत की प्रजा, सब विधि दीन मलीन।
तुम सों यह बिनती करत, दया करहु लख दीन ॥
हाथ जोरि सिर नायिकै, दाँति तरे तृन राखि।
परम नम्र ह्वै कहत हैं, दीन वचन अति भाखि ॥
बिनवत हाथ उठाय कै, दीजै डरि भगवान।
युवराजहि गतरुज करी, देहु अभय को दान ॥
तिन के दुःख सों सब दुखी, नर नारिन के बृन्द।

तासों तुरतहि रोग हरि, तिन कहै करहु अनंद ॥”
ऐसा राज्य जिसमें प्रजा की आत्मिक तथा भौतिक उत्थिति हो, प्रजा धन धान्य से सुखी हो तथा प्राणियों में समानता का विचार हो तो उस राज्य को कौन बुरा कहेगा ! भारतेन्दु जी अपनी सरकार से यही चाहते थे और उसी की प्रार्थना करते थे ।

राजभक्ति विषयक काव्य में “रिपनाष्टक” का विशेष महत्व है और उसमें भारत की दीनावस्था के प्रदर्शन के साथ रिपन साहब की प्रशंसा की गई है । उदाहरणार्थ :—

“जय तीरथ पति रिपन प्रजा अघ शोक विनाशक
गग जमुन सम मिलत तदपि जान्हमि मरजादक ।
अक्षयवट सम अचल कीर्ति थापक मन पावन
गुप्त सरस्वति प्रगट कमीशन मिस दरसावन ।
कलि कलुष प्रजागन भीति को सब विधि मेटन रामरट
जय तारन तरन प्रयाग सम जस चहुँ दिसि सब पै प्रगट ॥”*

भारतीय सहायता से मिथ्र में अंग्रेजों की विजय हुई और राजभक्त भारतेन्दु जी ने “विजयनी विजय बैजयन्ती” में लिखा :—

“का अरबी को वेग कहाँ वाको बल भारी ।
सिंह जगे कहुं स्थान ठहरिहैं समर मंजारी ॥
उठहु वीर तरवारि खींच मारहु धन संगर ।
लोह लेखनी लिखहु आर्य बल जवन हृदय पर ॥”

उपर्युक्त पद्य में ओज गुण का अच्छा समावेश मिलता है । इस प्रकार की राजभक्ति का समावेश हम “विजय बल्लरी” आदि रचनाओं में पाते हैं । यहाँ पर यह कह देना अनुचित न होगा कि भारतेन्दु जी के हृदय में राष्ट्रीयता का प्रभाव इन राजभक्ति विषयक काव्यों में स्पष्ट हो गया है । और आगे चल कर स्पष्टवादिता के प्रभाव से वह देश

काशी में ग्रहण के हित महाराज कुमार के आने के हेतु ।

प्रेम आदि में प्रस्फुटित हुआ। वही देश प्रेम जिसके पूर्ण विकास के फलस्वरूप हम असंख्य वीरों की आहुतियाँ स्वतन्त्रता के यज्ञ कुण्ड में पड़ते देखते हैं। भारतेन्दु जी तथा उनके प्रभाव से अब प्रभावित सुधारकों के प्रयत्न स्वरूप ही भारत आज इस परिवर्तन के दिन का दर्शन कर रहा है।

भारतेन्दु जी नवीन जागृति के पक्षपाती थे। कुशिक्षा अविद्या, वर्णभेद, स्त्रियों की शिक्षा हीनता, विवाह आदि, समय का अपव्यय तथा कुसंगति, बहु विवाह, विधवा विवाह निषेध, बाल विवाह, बाल हत्या, पाश्चात्य सभ्यता का कुप्रभाव, स्वधर्म निन्दा आदि के घोर विरोधी थे और उनका समूल नाश करना अपना ध्येय समझते थे। सुधारवादी भारतेन्दु जी का देश प्रेम अत्यन्त गम्भीर था। भारतेन्दु जी ने अपनी कविताओं में निज अधःपतन पर शोक प्रदर्शित किया है। वीरता तथा साहस का उपदेश देकर वह भारत का उद्धार करना चाहते हैं। देश प्रेम के अन्तर्गत भारतेन्दु जी अतीत के प्रति गर्व, वर्तमान के लिए क्षोभ तथा भविष्य के प्रति शुभकामना ही प्रदर्शित करके जनता में जागृति और आशा लाना चाहते हैं। भारत की दुर्दशा देख कर कवि पुरानी बातें स्मरण करता है :—

“ये कृष्ण वरन जब मधुर तान,
करते अमृतोपम वेद गान,
तब मोहित सब नर नारि वृन्द,
सुनि मधुर बरन सज्जित सुछन्द।
जग के सबही जन धारि स्वाद,
सुनते इनही की बीन नाद ॥”

किन्तु भारत की दशा आज क्या है :—

“हाय वहै भारत भुवि भारी
सबही विधि सो भयो दुखारी ॥”

भारत संसार का ताज कहा जाता था। देखते ही देखते :—

“सोइ भारत की आज यह भई दुर्दशा हाय ।

कहा करें कित जायँ, नहिँ सूझत कछु उपाय ॥”

वह दुःख से पीड़ित हो कर काशी, प्रयाग, पंचनद, चितौर, कन्नौज, विन्ध्याचल से कहते है तुम्हारी वीरता कहाँ गई, तुम क्यों नहीं उठते, उठो और :—

“धोवहु भारत अजस पंका ।

मेढहु भारत भूमि कलका ॥”

भारत की करुण गाथा समझने वाले यथार्थ में भारतेंदु जी ही थे । भगवान से प्रार्थना की जाती है :—

“कहाँ करुनानिधि केसव सोए ।”

यही नहीं, भारत की अज्ञानता, कुशिक्षा, द्वेष आदि देख कर वे अपने को न रोक सके और लिखा :—

“अब तजहु वीर वर भारत की सब आशा,

इत कलह विरोध सबन के हिय घर करिहैं ।

मूरखता को तम चारहुँ ओर पसारिहै,

वीरता, एकता, ममता दूर सिधारिहैं ।

तजि उद्यम सब ही दास वृत्ति अनुसरिहैं,

नसि जैहैं सगरे सत्य धर्म अविनासी ।

निज हरि सों ह्वै है विमुख भरत भुववासी ॥”

किन्तु सबका पाश्चात्य भगवान के ही चरणों में हो सकता है और उसका निराकरण भी उन्हीं की दया दृष्टि पर निर्भर है ।

“हरि पद में रत होइ न दुख कोउ कहूँ व्यापै ।”

और फल तभी मिलेगा :—

श्रुति पंथ चलै सज्जन सबै सुखी होहिँ तजि दुष्ट भय ।

कवि वानी धिर रस सों रहै भारत की नित होय जय ॥”

भारतेंदु जी को इस कृपा कोर को प्राप्त कर लेने का पूरा विश्वास है और इसी लिये सारी निराशा और दुर्दशा को सम्मुख देखते हुए भी वे

भविष्य की शुभाशा के रूप में भगवान से याचना करने में संकोच नहीं करते । भारतेन्दु जी ब्रिटिश राज्य संचालन नीति को भली भाँति समझते हैं और तभी एकाएक उनके मुँह से निकलता है :—

“बढ़े ब्रिटिश वाणिज्य पै हमको केवल सोक ।” आदि
भारतेन्दु जी के देश प्रेम का परिचय इन शब्दों में मिलेगा :—

“विद्या की चरचा फैली, सब को सब कुछ कहने-सुनने का अधिकार मिला । देश-विदेश में नई-नई विद्या और कारीगरी आई । तुमको उस पर भी वही जन्म पत्री की विधि, थोड़े में सतोष, गाय हाँकने में प्रीत और सत्यानाशी चाले ! हाय ! अब भी भारत की यह दूदंशा ! अरे अब क्या चिन्ता पर सम्हलेगा ।” आदि । देश प्रेम के साथ-साथ भारतेन्दु जी की कविता का रूप भी यहीं से परिवर्तनशील हो गया । क्रमशः खड़ी बोली में काव्य रचना प्रारम्भ हुई और कवित्त तथा सवय्या शैली का प्रयोग कम पड़ने लगा । स्थानाभाव के कारण सबके उदाहरण देना कठिन हो जाएगा इससे इस प्रसंग को यही समाप्त करना पड़ता है ।

४ स्फुट काव्य

[१. उर्दू काव्य २. गीत संगीत काव्य ३. समस्यापूर्ति
४. हिन्दी प्रचार ५. अनुवाद]

खड़ी बोली और उर्दू

हिन्दू मुसलिम संघर्ष के पश्चात् दोनों धर्मों के अनुयायियों ने एक दूसरे की भाषा को अपनाने का प्रयत्न किया और फल स्वरूप खड़ी बोली तथा उर्दू का प्रचलन आरम्भ हुआ । इन से प्रभावित भारतेन्दु जी भी खड़ी बोली से अपने को बचा न सके किन्तु यह प्रारम्भिक काव्य बहुत महत्त्व नहीं रखता कारण यह है कि प्राचीन परिपाटी के काव्य के सम्मुख खड़ी बोली को काव्य भाषा बनाने का ध्यान नहीं दिया । खड़ी बोली काव्य के अन्तर्गत आपकी कुछ लाबनियाँ, पद,

आदि आते हैं जिनकी भाषा में प्रायः ब्रज भाषा के कारक मिले रहते हैं । इसके अतिरिक्त आपका उर्दू काव्य प्रचुर मात्रा में और पूर्ण है । यद्यपि खड़ी बोली के काव्य में भी सरसता है किन्तु ब्रज भाषा पर उनका स्वभाव सिद्ध अधिकार है । स्थान स्थान पर मौज में आकर इन्होंने खड़ी बोली का प्रयोग भी रसात्मकता के साथ किया है । प्रकृति चित्रण का एक उदाहरण पर्याप्त होगा ।

“बीर बहूटी मखमली,
बूटी सी अति लाल ।
हरे गलीचे पर फिरै,
सोभा बड़ी रसाल ॥
करके याद कुटुम्ब की,
फिरे विदेशी लोग ।
बिछड़े प्रीतम गलियों,
के सिर छाया सोग ॥
छोड़ छोड़ मरजाद निज,
बढ़े नदी नद नाल ।
लगे नाचने मोर बन,
बोले कीर मराल ॥
उपवन में कचनार,
बनों में टेसू है फूले ।
मदमाते भीरे फूलो पर,
फिरते है भूले ॥”

भारतेंदु जी को उर्दू से प्रेम था । उन्होंने उर्दू का (उर्दू कवि समाज) स्थापित किया था और स्वयम् उर्दू कविता करते थे । उर्दू की कविता में आपका तखल्लुस (उपनाम) ‘रसा’ था । भारतेंदु जी के दरबार में अमीर अली ने आपके विषय में लिखा था कि “बाबू हरिश्चन्द्र के शैरों में रुयालात जरूर बहुत ऊँचे होते थे लेकिन चूँकि उन्होंने उर्दू जुबान बाकायदा नहीं सीखी थी इसलिये उनकी जुबान चुस्त नहीं थी ।”

भारतेंदु जी स्वभाव से ही उदार थे । अन्य धर्मों में विश्वास न होते हुये भी वह उनका पठन-पाठन किया करते थे । संसार का भाषा साहित्य आदि पढ़ने का उन्हें शौक था । साथ ही भगवान की एक सत्ता पर विश्वास था । हिन्दू, मुसलमान, ईसाई में कोई विशेष भेद नहीं मानते थे । तभी कहते:—

“तेरा दम भरते हैं हिन्दू,

अगर नाकूस बजता है ।

तुझे ही शोख ने प्यारे,

अजाँ देकर पुकारा है ॥

न होते जिलवः गर तुम तो,

यह गिरजा कब का गिर जाता ।

निसारा को भी तो आखिर,

तुम्हारा ही सहारा है ॥”

यह उनकी एकेश्वर वाद पर दृढ़ निष्ठा का प्रबल प्रमाण है जिससे प्रेरित होकर उन्होंने उर्दू साहित्य का भी और अध्ययन किया था । किन्तु जो कुछ भी हो उन्हें तो इससे सन्तोष है:—

“बुरा है या भला है,

जो कुछ है प्यारे तुम्हारा है ।”

इसलिये उनका काव्य तो अपने उपास्य को रिझाने के लिये ही है और जिसमें वह तुलसी के इस सिद्धान्त के पोषक हैं:—

“भाय कुभाय अनख आलसहूँ ।

नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ॥

अतः मीर अमीर अली के अनुसार यदि उसमें ‘चुस्ती’ न हो तो उसकी उन्हें फिकर भी नहीं थी । उर्दू शायरी में ‘आशिक-माशूक का विरह ही भरा पड़ा है और उसी का प्रभाव भारतेंदु जी पर है ।

प्रायः उनको हम परम्परा के पीछे-पीछे चलते देखते हैं:—

फुँगा करती है बुलबुल याद में,

गर गुल के ए गुलचीं (माली) ।
सदा (आवाज) इक आह की आती है
जब गुंते चटकते हैं ॥”

इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं पर उर्दू बहरों के प्रवाह के कारण अपने हादिक भक्तिभाव को व्यक्त करने के लिये भी उनका उपयोग कर लिया गया है । भाषा उर्दू प्रधान ही है ।

“वह नाथ अपनी दयालुता
तुम्हें याद हो कि न याद हो ।

व जो कौल भक्तों से था दिया
तुम्हें याद हो कि न याद हो ॥”

भारतेन्दु जी की उर्दू कविता पदों, शेरों, गजलों तथा संगीत मय रागों में पाई जाती है । यह छन्द अधिकतर लोकप्रियता के आधार पर चुने गये हैं और इसी आधार पर उनका विषय भी अधिकतर भृंगार है । उदाहरण के लिये एक गजल दी जाती है:—

“किसी पहलू नहीं आता तेरे आसिक को ।
दिले मुजतिर तड़पता है निहायत बेकरारी है ॥”

उर्दू की लावनी आपने बहुत सुन्दर लिखी हैं । एक उदाहरण उसका भी नीचे दिया जाता है:—

“जहाँ वे देखो नाज गजब का
उसके सब नखरे जानो ।
देख करिश्मा उसी सोंगे में
उसको गर दानो ॥

जहाँ हो भोलापन, तुम उस
भोले को बहाँ पै पहचानो ।
जुल्म जो देखो तो उस
जालिम की बेरहमी मानो ॥

बिना उसके इस शीशये—दिल को करता कोई चूर नहीं ।

सिवा यार के दूसरे का इस दुनियाँ में नूर नहीं ॥

[प्रेम तरंग]

गीत सङ्गीतः—उर्दू काव्य के पश्चात् भारतेन्दु जी को गीत एवम् सगीत प्रेमी के रूप में देखेंगे । बाल्यावस्था से ही ये कला से प्रेम रखते थे । स्वभाव से ही रक्षित मनुष्य के लिये सगीत बहुत आवश्यक वस्तु है । भारतेन्दु जी सगीतज्ञ थे । अनेक वाद्य यन्त्रों पर उनका अधिकार था और सगीतज्ञों का विशेष सम्मान करते थे । उनका गीत काव्य इसी सगीत प्रियता पर आश्रित है । इसकी रचना में सगीतात्मकता का विशेष ध्यान रखा गया है । साथ ही भारतेन्दु जी की कला कुशलता का परिचय तो हमें तभी मिल जाता है जब हम उनके मल्हार, होली, कनिगड़ा, खेमटा, धमार, ठमरी, गजल, लावनी, राग भिदुरा, ख्याल, पुरबी, कजली, गौरी, भैरवी, पीलू, काफी, सारंग, हिटोला, झिझोटी, दादरा, बिहाग, भीमपलासी, देस, ईमन, वसन्त आदि रागों में बधे हुये असाध्य गीतों पर दृष्टिपात करते हैं । स्वर ज्ञान के अतिरिक्त ताल ज्ञान का परिचय हमें इनके अनेक ऐसे गीतों को देखकर लगता है जो झपताल, एक ताल, चौताला, त्रिताला आदि में बाँधे गए हैं । सगीत के ग्रन्थों में प्रेम तरंग, होली, मधुमकुल तथा राग सग्रह ही विशेष ग्रन्थ हैं । इन में रागों के अनुसार विषयों का समावेश भी किया गया है । इससे संगीत कला में भारतेन्दु जी की गहरी पहुँच लक्षित होती है । भैरवी प्रातःकाल गायी जाती है और उसी का वर्णन उनके इस पद में है—

रैन की हो पिय की खुमारी न टूटै ।

बहुत जगाय हारी मोरी सजनी नीदड़िया नहीं छूटै ॥

भोर भए गर लगत न प्यारो अवर—सुधा नहि छूटै ।

‘हरिचंद’ पिया नीद को मातो सेज को सुख नहि लूटै ॥

[प्रेम तरंग]

इसी प्रकार से भारतेन्दु जी के पद अधिकतर राग रागिनियों में

बैद्य हैं। भारतेन्दु जी की गीति काव्य की प्रेरणा महाकवि जयदेव, विद्यापति, सूर आदि से प्राप्त हुई थी। इन्हीं के अनुसार उन्होंने कोमलकान्त पदावली में करुण कोमल रसों का सुन्दर वर्णन किया है। चल्लभानुयायी होने के कारण राधा-कृष्ण लीला ही का काव्य अपने विभिन्न अंगों सहित प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। चद्रावली आदि नाटकों में भी इनका समावेश कर दिया गया है। श्रीकृष्ण तथा राधा जी का वर्णन बाल्यकाल से ही प्रारम्भ किया। सूर से प्रभावित होकर विनय, बाललीला आदि के पद भी उन्होंने काफी लिखे हैं। गीति काव्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है और भारतेन्दु जी ही इस परम्परा काव्य के अन्तिम प्रकाश मान रत्न कहे जा सकते हैं। इनके काव्य में रमणीयता, मरसता, मार्मिकता आदि गीति काव्य के सभी प्रधान गुण प्रायः विद्यमान हैं। अधिकतर इन पदों में कृष्ण लीला का ही गान हुआ है। इस गीति काव्य के उदाहरण में भारतेन्दु जी इष्ट देव का ही स्मरण करते हैं —

जुगल छबि नैनन सों लखि लेहु

ठाढ़े बाहुँ जोरि कुंजन मै अवसर जानि न देहु

साँझ समय आगम बरसा के फूल्यो बन चहुँ ओर

लहरत कालिंदी जल झलकत आवत मंद झकोर

प्रथम फूल फूल्यो आमोदित रसमय सुखद कदम्ब

ता तट ठाढ़े जुगल परसपर किये बाहुँ अवलम्ब

पसरित महामोद दसहूँ दिसि मत्त मौर रहे भूलि

‘हरीचंद’ सखि सरबस वारयो सो छबि लखि जिय फूलि ॥

इसी प्रकार वास्तव्य का एक पद भी देखिये इसमें कृष्ण का बाल वर्णन मिलता है उदाहरणार्थः—

छोटी छोटी शीश लटुरिया भ्रमराबलि जनु आई री ।

तैसी तनक कुल्हइया तापै देखत अति सुखदाई री ।

....

....

....

..

कोटि काम अभिराम रूप लखि अपनों तन मन वारै री
हरीचद ब्रजचद-चरण-रज लेत बलइया हारै री
इधर राधा जी का भी वर्णन भारतेन्दु जी ने उतनी ही मुन्दरता
से किया है जितना श्री कृष्ण जी का । क्योंकि जुगल मूर्ति उनके इष्ट
देव हैं । राधा जी भी बालपन में उतनी ही प्रसन्न हैं और उनकी माता
को राधा जी की यह किलकारियाँ कितना आनन्दित करती होंगी:—

किलकि किलकि हुलसत मन ही मन गहि अँगुरी मुख मेलै ।

कबहुँक लै झुनझुना बजावति मीठी बतियन बोलै ॥

यथार्थ में उनकी माता बड़भागिन थी:—

बड़ भागिनि कीरति सी मँय्या गोहन लागी डोलै ।

इन लीला सम्बन्धी चित्रों का वही आधार लिया गया है जो सूर
आदि में मिलता है । लीला समाप्त होने पर श्रीकृष्ण जी मथुरा चले
जाते हैं और गोपिकायें विरह विधुरा हो जाती हैं और वियोग में रो
पड़ती है:—

नाथ मैं केहि विधि जिय समझाऊँ ।

बातन सों यह मानत नाही कैसे कहाँ मनाऊँ ॥

जदपि पाहि विश्वास परम दृढ़ वेद पुरानहुँ साखी ।

कछ् अनुभव हू होत कहत हैं जद्यपि सोई बहुभाखी ॥ आदि

[कृष्ण चरित्र]

अपने अपराधों की क्षमा की आकांक्षा वाली यह भी कहती है:—

हरि मोरी काहे सुधि बिसराई ।

हमतो सब विधि दीन हीन तुम समरथ गोकुल-राई । आदि

[कृष्ण चरित्र]

गोपी विरह, उद्धव-गोपी संवाद, गोपियों की निराशा, उनके
वियोग की अनेक दृश्यायें आदि बहुत कुछ उसी ढंग पर वर्णित हैं ।

उनका यह पद अकिंचन आत्मसमर्पण का अच्छा उदाहरण है। आगे चल कर उद्धव का ब्रज में आगमन होता है और निर्गुण का संदेश दिया जाता है किन्तु वहाँ तो श्याम मे डूबी हुई गोपिकाओं एवम् राधा जी को इन रूखी बातों से क्या मतलब:—

हरि संग भोग कियो जा तन सों तासों कैसे जोग करै ।

जो सरीर हरि सग लपटानी वापै कैसे भसम धरै ?

[प्रेम फुलवारी]

यथार्थ मे इन प्रश्नों का समुचित उत्तर उद्धव जी के पास न था । फिर—

उधो जी अनेक मन होते

तो इक श्याम सुन्दर को देते इकली जोग सँजोते ।

[प्रेम मालिका]

इसी प्रकार से विरह की दशों दशाओं का वर्णन इस रीति काव्य में भारतेन्दु जी की आकांक्षा भी स्पष्ट हो जाती है जब नीचे लिखा पद का अवलोकन किया जाता है:—

ब्रज के लता पता मोहि कीजै

गोपी पद पंकज पावन की रज जामैं सिर भीजै

आवत जात कुंज की गलियन रूप सुधा नित पीजै

श्री राधे राधे मुख यह बर ‘हरिचंद’ को दीजै ॥

[प्रेम मालिका]

यहाँ पर कह देना अनुचित न होगा कि भारतेन्दु जी के यह पद सभी गेय पद हैं जो संगीत में लेकर भली भाँति गाये जा सकते हैं । यही नहीं अधिकतर आपने स्वयं ही उन पदों को रागों में विभाजित कर दिया है और उनमें जो राग जिस समय में गाया जाना चाहिये उसी विषय का उसमें समावेश किया है । भारतेन्दु जी स्वयं संगीत प्रेमी थे, राग, वाद्य में आप निपुण थे । स्वयम् कीर्तन करते थे और आपकी वाणी मधुर थी । श्री शिवनन्दन सहाय ने इनकी जीवनी में

एक स्थल पर कहा है कि “ताल और झांझ बहुत अच्छा बजाते थे । सितार, मृदंग और तबला में उनकी दक्षता नहीं थी।”
(Life of Harish-Chandra by Nandan Sahai)
संगीत सार आदि से आपकी संगीतज्ञता प्रकट हो जाती है । एक मलार में वर्षा का वर्णन देखिए:—

हरि बिन काली बदरिया छाई
बरसत घेरि घेरि चहुँ दिसि तैं दामिनि चमक जनाई
कोइलि कुहुकि कुहुकि हिय मेरे विरहा अगिन बढाई
दादुर बोलत ताल तलैयन मानहुँ काम बधाई
कौन देस छाए नन्द नन्दन पाती हू न पठाई
‘हरीचद’ बिनु विकल विरहिनी परी सेज मूरझाई
[वर्षा-विनोद]

ताल ज्ञान के उदाहरण के लिये ये पंक्तियाँ उचित होंगी:—

श्याम घटा छाई श्याम श्याम कुंज भयो,
श्यामा-श्याम ठाढ़े तामै भीजत सोहै
तैसिय श्याम सारी प्यारी तन सोहै भारी,
छबि देलि काम-वाम चंचला हू मोहै । आदि

इसमें भारतेन्दु जी ने राग मलार में चौताल का प्रयोग किया है ।

समस्या पूर्ति:—श्रृंगार काव्य के अन्तर्गत भारतेन्दु जी की श्रृंगार सम्बन्धी समस्यापूर्तियों पर विचार किया जा चुका है किन्तु यहाँ स्फुट काव्य में आपकी अन्य विषयक समस्याओं पर एक दृष्टि डाल लेना भी अनुचित न होगा । यह समस्या पूर्तियाँ अधिकतर राज भक्ति तथा वीर रस सम्बन्धी ही होती थीं । श्रृंगारिक समस्या पूर्तियों के ही समान आपकी यह पूर्तियाँ भी सुन्दर हैं । भारतेन्दु जी की यह कला प्रत्येक क्षेत्र में समान है । भक्ति सम्बन्धी “राम बिना बेकाम सभी” समस्या पूर्ति इस प्रकार की गई थी:—

राज-पाट हय गज रथ प्यादे बहु विधि अन घन घाम सभी ।

हीरा मोती पन्ना मानिक कनक मुकुट उर दाम सभी ॥

खाना पीना नाच तमाशा खाख ऐश आराम सभी ।

जैसे विजन निमक बिना त्यों राम बिना बेकाम सभी ॥

उसमें उर्दू की शैली का प्रयोग किया गया है । समस्या पूर्ति में वह गम्भीरता और भाषा सौष्ठव तथा प्रवाह लाना भी सरल कार्य नहीं है जैसा स्वच्छन्द काव्य रचना में छन्द में होता है । बीर रस की एक समस्या पूर्ति देखिये । समस्या थी:—

“रोम मोम रूस फूस है:—

भाजे से फिरत शत्रु इत उत दौरि दौरि

दबत जमानी जाको जोहत जलूस है

ब्रह्म अस्त्र ऐसी तोपै तोपै एकै बार पौज

विमल बढूक गोली दारू कारतूस हैं

ऐसो कौन जग मे विलोकि सकै जीन इन्हे

देखि बल बैरी-दल रहत मसूस हैं

प्रबल प्रताप भारतेश्वरी तिहारै क्रोध

ज्वाल काल आगे रोम मोम रूस फूस है

[स्फुट कवितायें]

इन समस्या पूर्तियों की प्रेरणाओं का वर्णन हम श्रृंगारिक समस्या पूर्तियों के खण्ड में देख चुके हैं । अधिकतर यह समस्यायें तत्कालीन परिस्थितियों से सम्बन्ध रखती थीं । किन्तु भारतेन्दु जी की कलम तो उनके श्रृंगारिक काव्य में बहती है:—

लौ बदनामी कलंकनि होइ चवाइनि को कबलौं मुख चाहिये

सासु जेठानिन की इनकी उनकी कब लौं सहि कै जिय दहिये

ताहूँ पे ऐती रूखाई पिया ‘हरिचंद’ की हाय न क्यों हू सराहिये

का करिए मरिए केहि भाँतिन नेह को नातो कहाँ लौं निबाहिये ॥

[स्फुट कवितायें]

प्राचीन शैली के काव्य में भारतेन्दु जी के सबध्या-कवित्त तथा

समस्या पूर्तियों के कारण उनका काव्य बहुत महत्वशाली है। रीति-कालीन घनानन्द का स्मरण भारतेंदु जी की सवय्या पढ़कर हो आता है। शब्दों का तोड़ मरोड़ हम पाते ही नहीं। सीधे तथा सरल शब्दों में वेदना का करुण ऋदन पढ़कर अवाक ही रह जाना पड़ता है। और यही भारतेंदु जी की प्रतिभा है।

मनोरंजन तथा चित्र काव्य :- रसिक एवम् हास्य प्रिय भारतेंदु जी बहुत ही विनोदी थे। आपकी दिचय्या का कोई ठिकाना नहीं रहता था। जब जिस समय जो मौज आई वही करने लगे। आपको घूमने का शौक था और एकान्त भ्रमण का अवसर जब आप को मिल जाता था तो आप बहुत प्रसन्न होते थे। सौदर्योपासक भारतेंदु जी सुन्दर वस्तु, सुन्दर प्रकृति, सुन्दर गुण, सुन्दर काव्य तथा सुन्दर आकृति प्रकृति वाली नवयौवना के प्रेमी थे और अधिकतर अपना समय इन्हीं में व्यतीत किया करते थे। इनसे भी बचे हुए समय में खेल तमाशो और इन्हीं में उपदेश, काव्य आदि के भी उपदेशात्मक खेल तमाशो के समावेश के साथ अपना विनोद किया करते थे। आपका सगीत-प्रेम, बुढ़वा मंगल का मंगल गान एवम् अप्रिल फूल डे की भाँति-भाँति की कहानियाँ तो विनोद प्रियता का परिचय देती ही है किन्तु यहाँ पर हम उनके काव्य विषयक मनोरंजन को ही लेकर चलेंगे।

भारतेंदु जी को शतरंज से बहुत प्रेम था और उस खेल में आप बहुत ही प्रवीण थे। आपका शतरंज का कला कौशल पूर्ण नक्शा उसका उदाहरण है। शतरंज की प्रशंसा में आप लिखते हैं :—

चतुर जनन को खेल चारु चतुरंग नाम को,
तामे चपल तुरंग चलत द्वै अर्ध धाम को।
जिमि कोउ विज्ञ सवार यद्यपि चाबुक कसि,
तिमि चौसठहुँ घर में फिरै बाजि अंक यह सब कहहु।
'हरिचंद' रसिक जन जान यह नित चित परमानंद लहहु॥

यह पद शतरंज के खिलाड़ी जितना समझ सकते हैं उतना हम नहीं।

अतएव यहाँ तो हम भारतेन्दु जी का मनोरंजन ही विशेष रूप में ग्रहण करते हैं। वैष्णव धर्मानुयायी भारतेन्दु जी ताश के खेल में भी शंख चक्र गदा पद्म के दर्शन करते हैं। ब्रह्म शक्ति तथा जीव उनके पत्तों में भी बादशाह, बीबी, गुलाम के स्थानापन्न कर दिये गये हैं। इन बातों से उनकी भक्ति तथा मौलिकता का स्पष्ट होना जान पड़ता है। आप स्टाम्प, फोटो, खिलौने, प्राचीन ऐतिहासिक पत्र आदि एकत्रित किया करते थे। आपके यहाँ नवीन एवम् प्राचीन ग्रन्थों का एक अच्छा पुस्तकालय भी था।

भारतेन्दु जी का मनोरंजन तथा चित्र काव्य हमें “उर्दू का स्यापा” ‘बकरी विलाप’, मनोमुकुल माला, मूक प्रश्न, मानलीला फूल बुझीवल, बदर सभा, नए जमाने की मुकरी आदि में मिलता है। यथार्थ में आपका हास्य बहुत ही विनोद प्रियता से परिपूर्ण है। उदाहरणार्थ उर्दू के स्यापे में आप लिखते हैं :—

“भई बात तो सच है, खुदा ने हमें भी अकिल दी है मैं समझता हूँ कि मेरे जीते मेरी जोरू कैसे रांड होगी। पर नौकर पुराना है झूठ कभी न बोलेगा” “बहरहाल हमे उर्दू का गम बाजिब है” हमारे पाठक लोगों को रुलाई न आवे तो हँसने की भी उन्हें सौगन्ध है क्योंकि हाँसा तमाशा नहीं बीबी उर्दू तीन दिन की पढ़ी अभी जवान कट्टी मरी है।

काव्य में भी :—

है है उर्दू हाय हाय, कहाँ सिधारी हाय हाय
मेरी प्यारी हाय हाय मुन्शी मुल्ला हाय हाय
बल्ला बिल्ला हाय हाय रोये पीटै हाय हाय
टाँग घसीटै हाय हाय सब दिन सौचै हाय हाय। आदि-
दूसरे स्थान पर बकरी विलाप में आप इसी प्रकार से लिखते हैं :—

छट्टी भई अदालतन आफिस भए सब बन्द
फिरे पथिक सब भवन निज बरि बरि हिय आनद

कोउ गावत कोउ हँसत मंगल करन विचारि
आगत पतिका बनि रही परदेसिन की नारि
ऐसे आनंद के समय बकरी अति अकुलाय
निज शिशु-गन लै गोद मे करत दीन बनि हाय ।

इस काव्य में मांसाहारी लोगों की पशुता तथा बकरी ढंवी की दीनता का सुन्दर वर्णन है । आगे चल कर हम “मूक प्रश्न” में उनकी कविता शक्ति के साथ शब्द विन्यास की कला का दर्शन करते हैं । उदाहरणार्थ:-

जीव बनस्पति शून्य रस वस्त्रौषधि मनि लेख
एक कृष्ण को ध्यान धरि प्रश्न चित्त सो देखि
मृतक बनस्पति लेख जल कृतिम रस मनि द्रव्य
जुगल चरन सिर नायिकै भाषु प्रश्न फल भव्य
धातु, शून्य जल रेख रस कृतिम औषध मिस्त्र
चतुर्व्यूह माधो सुमिरि कह फल स्वच्छ अभिस्त्र
मिस्त्रौषध, कृतिम बसन द्रव्य लेख मनि भूमि
अष्ट सखी सह-श्याम सजि कहु फल गुरु-पद चूमि ॥

इन दोहों में मनुष्य अपने जी में कोई वस्तु ले ले और फिर जिन दोहों के दूसरे तुक की गिनती से सकेतो को जोड़ कर जो फल निकले वह नीचे लिखी छप्पय के उसी अंक में देख ली जाए । उत्तर निकल आएगा । छप्पय :—

जीव एक द्वै मृतक बनस्पति जो जानो
धातु चतुर्थी शून्य पाँच जल छठ्यो मानो
रस सातों आठवों पारथिन नवों बसन कहि
दस मुद्रा मणि ग्यारह बारह मों मिश्रित लहि
औषध तेरह कृतिम चतुरदश पंद्रह लेखन सकल
हरिचंद जोड़ि दोहान को कहहु प्रश्न फल अति विमल ॥

उदाहरणार्थ किसी के रस लेने पर पहला तथा दूसरा और तीसरा दोहा सम्मुख आवेगा । उसके अंक एक जुगल चतुर अर्थात् एक दो और चार

गिन के सात होने पर छप्पय में सातवीं वस्तु रस है जानी जा सकती है। इस प्रकार से भारतेन्दु जी बैठे-बैठे विनोद पूर्ण रचना किया करते थे। 'मनोमुकुलमाला' में आप इस प्रकार से लिखते हैं :—

Gवहु Eस अCस बल हरहु प्रजन की Pr।

सरU जमुना गंग में जब लौं थिर जग नीर ॥

रँग चित्रों में :—

.....दुति करि बैरि झट.....मुख मसि लाय।

....परिजन.....लित.....हि इत पठवाय ॥

मूक प्रश्नों की भाँति मानलीला तथा फूल बुझीव्वल में भी आपने करिश्में दिखलाए हैं। इसमें मानलीला के दोहों में के फूलों से ही किसी पुष्प का नाम लेने से तथा आगे के बने हुये कोष्ठों में जोड़ घटा कर उनका नाम बतला दिया जाता है। मनोरंजन सम्बन्धी रचनाओं में चंदर सभा नामक रचना काफी हास्यपूर्ण है। उर्दू के प्रसिद्ध और सर्व प्रथम नाटक 'इन्दर सभा' के ऊपर व्यंग्य काव्य की रचना की गई जान पड़ती है। क्रम और शैली वही है :—

[आना राजा बंदर का बीच सभा के]

सभा में दोस्तों बदर की आमद आमद है,

गधे और फूलों के अफसर की आमद आमद है।

मरे जो घोड़े तो गदहा य बादशाह बना,

उसी मसीह के पैकर की आमद आमद है।

इसके बाद शुतुरमुर्ग-परी-का नाच होता है :—

आई हूँ मैं सभा में छोड़ के घर

लेना है मुझे इन आम में जर

दुनिया में है जो कुछ सब जर है

बिन जर के आदमी बदर है

बंदर जर हो तो इन्दर है

जर ही के लिये कसबो हुनर है

भारतेंदु जी की मनोरंजकता के साथ-साथ उनकी कवित्व शक्ति और उपदेशात्मकता साथ-साथ चलती है। नए जमाने की मुकूरियों में मनोरंजन के साथ भारत की राजनीतिक स्थिति पर बहुत सुन्दर कटाक्ष हुये हैं। उदाहरणार्थ :—

भीतर भीतर सब रस चूसै,
हँसि हँसि कै तन मन धन मूसै ।
जाहिर बातन में अति तेज,
क्यों सखि सज्जन अगरेज ॥

[नए जमाने की मूकरी]

भारत की धार्मिक, सामाजिक कुप्रथाओं का निराकरण भी उन्होंने किया है। यह भारतेंदु जी की विशेषता थी।

हिन्दी प्रचार :— यों तो भारतेंदु जी की भाषा प्रचार प्रवृत्ति का अनुमान हमें उनके काव्य, गद्य, अनुवाद आदि ग्रंथों को देख कर लग जाता है। किन्तु “हिन्दी की उन्नति” नामक कविता इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है कि भारतेंदु जी की विचार धारा हिन्दी प्रचार के प्रति क्या थी ? वह मानते हैं कि अन्य भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना बहुत ही लाभदायक है, किन्तु अपने घर, अपने देश तथा निज का कल्याण; बिना मातृभाषा के नहीं हो सकता। अन्य भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करके हम जीवन के थोड़े से क्षेत्रों में उन्नति कर सकते हैं किन्तु हमारी तथा हमारे मस्तिष्क की पूर्ण उन्नति तभी होगी जब हम अपने दैनिक जीवन में मातृभाषा का ही प्रयोग करेंगे। यही नहीं केवल अन्य भाषाओं का ही ज्ञान प्राप्त करने से हमको बहुत सी असुविधाएँ सहन करनी पड़ती हैं, वे यदि मिट सकती हैं तो मातृभाषा को अपनाने से ही। यहाँ पर “हिन्दी की उन्नति” से कुछ उद्धरण दिये जाते हैं :—

अगरेजी पढ़ि के जदपि सब गुन होत प्रवीन
पै निज भाषा ज्ञान बिन रहत हीन के हीन
यह सब भाषा काम की जब लौ बाहर बास

घर भीतर नहि कर सकत इन सों बुद्धि प्रकास ,
इस कारण :—

बच्चो तनिक हू समय नहि तासों करहु न देर
औसर चूके व्यर्थ की सोच करहुगे फेर ॥
प्रचलित करहु जहान मे निज भाषा करि जतन
राज काज दरबार मे फैलावहु यह रतन ॥
भाषा सोधहु आपनी होइ सबै एकत्र
पढ़हु पढ़ावहु लिखहु मिलि छपवावहु कछुपत्र ॥

आगे प्रोत्साहित करते है :—

निज भाषा, निज धरम, निज मान करम व्योहार
सबै बड़ावहु बेगि मिलि कहत पुकार पुकार
× × ×

करहु बिलम्ब न भ्रात अब उठहु मिटावहु सूल
निज भाषा उन्नति करहु प्रथम जो सब को मूल
और इसी मूल कारण को लेकर चलने से देश का कल्याण होगा :—

लहहु आर्य्य भ्राता सबै विद्या बल बुद्धि ज्ञान
मेरि परस्पर द्रोह माल होहु सबै गुन-खान ॥

इन उद्धरणों से भारतेन्दु जी का यह विश्वास हमें ज्ञात होता है कि भारत की दीनावस्था का यही मूल कारण है कि अपनी मातृभाषा का कुछ भी महत्व हमारे हृदयों में नहीं है। यदि मातृभाषा का प्रचार किया जाय तो भारत, जो सदा से संसार में सर्वश्रेष्ठ था, आज फिर सम्माननीय हो जाय। इन विचारों तथा आधारों को लेकर भारतेन्दु जी का हिन्दी प्रचार का कार्य प्रारम्भ हुआ और अनेक भाषाओं का पठन पाठन एवम् अध्ययन करके वे इन भाषाओं की सुन्दर सामग्री हिन्दी में अनुवादों के रूप में लाने लगे। हिन्दी भाषा के शुद्ध संस्कृतमय रूप का अन्य भारतीय जातियों द्वारा ज्यों का त्यों ग्रहण किया जाना सरल बात न थी और इसी कारण भारतेन्दु जी आज के ज्वलन्त प्रश्न हिन्दी-

हिन्दुस्तानी को भी उसी समय से हल करने में व्यस्त हो गये थे । वह हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप में देखना चाहते थे किन्तु हिन्दी का रूप पूर्णरूपेण संस्कृत के ही शब्दों से परिपूरित करना उनका ध्येय न था । वह तो चाहते थे कि केवल हिन्दू ही नहीं बरन् भारत की अन्य जातियाँ भी हिन्दी को भली भाँति समझ सकें । इस कारण हिन्दी को वह संस्कृत, अरबी, फारसी तथा उर्दू मिश्रित बनाना चाहते थे जिसका प्रयोग हम प्रातः से लेकर सायंकाल तक किया करते हैं । तब तो स्पष्ट है कि निज की भाषा के बिना अपना कल्याण अयम्भव है किन्तु अन्य भाषाओं की सहायता के बिना भी कार्य साधन नहीं हो सकता :—

अंग्रेजी और फारसी अरबी संस्कृत ढेर

खूले खजाने तिनहि क्यों लूटत लावत ढेर

सबको सार निकाल कै पुस्तक बचहु बनाइ

छोटी बड़ी अनेक विधि विविध विषय की लाइ ॥

यह उनका भाषा साहित्य निर्माण का आदर्श था । उनका गद्य, पद्य आदि सभी कुछ अधिकतर सरल हिन्दी में है जिसमें अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग स्वतन्त्रता से हुआ है । इसी सरल हिन्दी का प्रचार करना वे अपना परम धर्म समझते थे ।

यों तो हिन्दी प्रचार के लक्षण भारतेन्दु जी के सम्पूर्ण साहित्य में प्राप्य हैं किन्तु स्वतन्त्र रूप में उनका पद्यबद्ध लेख “हिन्दी लेक्चर” अथवा “हिन्दी उन्नति” इसी विषय को लेकर लिखा गया है । इसमें ९८ दोहे हैं और इनमें मातृभाषा हिन्दी की उपयोगिता, भारत की धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक आदि दुर्दशाओं का कारण, निज भाषा की उपेक्षा आदि का विस्तृत वर्णन है । यह लेक्चर भारतेन्दु जी की राष्ट्रीयता, देश प्रेम, मातृभाषा—प्रेम आदि का द्योतक है ।

नाटकों में काव्य :—यद्यपि भारतेन्दु जी के नाटकों में आये हुये काव्य का विवेचन धार्मिक, श्रृंगारिक, राष्ट्रीय काव्य शीर्षकों के अन्तर्गत आ चुका है किन्तु यहाँ पर हम देखेंगे कि उन संवादों, दृश्यों

तथा कविताओं, गीतों आदि का शुद्ध काव्य की दृष्टि से और नाटकों में उनके स्थान की दृष्टि से क्या महत्व है ?

उदाहरणार्थ सत्य हरिश्चन्द्र में गंगा वर्णन को यदि हम लें तो कह सकते हैं कि यद्यपि यह वर्णन राजा हरिश्चन्द्र के मुख से कराया गया है, तथापि काव्य की दृष्टि से उसका अगल महत्व है । गंगा की धारा, तरगावलियाँ, सुन्दरियों का स्नान, उनकी क्रीड़ा आदि सम्पूर्ण बातें कवि ने बड़ी ही सजीवता के साथ चित्रित की हैं । नाटक से अलग कर पढ़ने पर उसमें कथा प्रसंग का कोई आभास नहीं और न प्रकृति सौन्दर्य से युक्त कविता कहीं, नाटक में होने के कारण, कवित्व गुण से हीन है फिर भी नाटक में वह अनुपयुक्त नहीं लगती है ।

चंद्रावली नाटिका में कृष्ण की प्रेमिका चंद्रावली मीरा की भांति प्रियतम में तन्मय हो जाना चाहती है और अपनी दुखिया आंखों की दीन दशा का वर्णन करती है:—

इन दुखियान को न सुख सपनेहू मिल्यो
यों ही सदा व्याकुल विकल अकुलायेंगी
प्यारे हरिचंद जू की बीती जानि ओष जो पै
जैहैं प्रान तऊ ये तो साथ न समायेंगी
देख्यो एक बारहू न नैन भरि तोहि यातें
जोन-जोन लोक जैहै तहीं पछितायेंगी
बिना प्रान प्यारे भए दरस तुम्हारे हाय
देखि लीजौ आंखें ये खुली ही रहि जायेंगी

अथवा कृष्ण की वियोग जन्य निराशा का बड़ा करुणापूर्ण वर्णन उसके मुख से कराया जाता है:—

बिछुरे पिय के जग सूनो भयो
'अब का करिए कहि पेखिये का ?
सुख छाँड़ि के संगम को तुम्हरे
इन तुच्छन को अब लिखिये का ?

हरिचंद जू हीरन को व्यवहार

कै काँचन को लो परेखिये का ?

जिन आंखिन में तुव रूप बस्यो

उन आंखिन सो अब देखिये का ?

इसमें संदेह नहीं कि विरह विह्वला चन्द्रावली के मुख से इस प्रकार के छन्द कवि की कवित्व शक्ति को प्रत्यक्ष करने में सफल है किन्तु नाटक में इनका आवश्यकता से अधिक विस्तार उसमें एकरसता (monotony) उत्पन्न कर देता है। किन्तु यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि इन छन्दों के कवित्व गुण में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं है। इन पद्यों के अतिरिक्त नाटकों में कुछ ऐसे पद्य हैं जो केवल वार्तालाप, मनोरजन आदि के लिये रखे गये हैं। ये प्रायः कथा से सम्बन्ध रखते हैं और इनका महत्व नाटकों में ही है। नील देवी में अब्दुरशरीफ कहता है:—

इस राजपूत से रहो हुशियार खबरदार

गफलत न जरा भी हो खबरदार खबरदार

ईमाँ की कसम दुश्मने जानी है हमारा

काफिर है यह पंजाब का सरदार खबरदार

और उधर राजा सूर्यदेव के शिविर में कहा जाता है:—

सावधान सब लोग रहहु सब भाँति सदा ही

जागत ही सब रहैं रैन हूँ सोअहि नाहीं

कसे रहैं कटि रात—दिवस सब वीर हमारे

अस्व पीठ सों होहि चारजामे जिनि न्यारे ॥

रात में सावधानी के हेतु दोनों फौजों में इस प्रकार के गान हो रहे हैं। बहुत से गीत इन नाटकों में स्वतन्त्र से हैं और बड़े रसपूर्ण हैं। दृश्य काव्य के मध्य में कहीं-कहीं उनकी शोभा अत्यधिक बढ़ गई है।

अनुवाद:—परिस्थितियों के अनुसार भारतेन्दु जी ने हिन्दी साहित्य के कोष को भरने के लिये अनुवाद कार्य भी करना प्रारम्भ

किया । स्वच्छन्द तथा मौलिक रचनाओं में कवि अपनी विचारधारा के अनुसार रचना करता है । किन्तु अनुवाद में उसे मूल का ध्यान प्रधानतः रखना पड़ता है और उसी के अनुसार आगे बढ़ना तथा विचारों में परिवर्तन न होने देना आदि बातों का ध्यान रखना पड़ता है । अतएव अनुवाद का कार्य सरल नहीं । किसी विद्वान का कहना है कि जैसे इत्र को एक शीशी से दूसरी में ढाला जाय तो उसकी कुछ न कुछ सुगन्ध अवश्य उड़ जायगी, इस प्रकार एक भाषा से दूसरी में अनुवाद करने पर भी भावों में कुछ न कुछ अस्तव्यस्तता अवश्य आती है ।

हिन्दी साहित्य को संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला, उर्दू आदि साहित्यों की सामग्री से परिपूर्ण करने के लिये तथा भाँति-भाँति की नवीन विचार धाराओं को अपने साहित्य में लाने के लिये ही अनुवाद का कार्य भारतेन्दु जी ने प्रारम्भ किया । अनुवाद का अच्छा या बुरा होना हम तभी जान सकते हैं जब अनुवादित पद्य या गद्य खण्ड में मूल का सभी चमत्कार तथा मूल की सभी विचार धारा, कल्पना आदि का समावेश तो हो जाय परन्तु कहीं पर भी यह न मालूम होने पावे कि श्रृंखला भग हो गई है, अथवा भाषा अस्वाभाविक और लचर है ।

हम पहले ही देख चुके हैं कि भारतेन्दु जी पर संस्कृत का जितना प्रभाव है उतना और किसी भी साहित्य का नहीं । हाँ आगे चल कर हम उर्दू, बंगला तथा अंग्रेजी आदि का प्रभाव भी पाते हैं । उसमें भी संस्कृत का पुट कहीं न कहीं अवश्य लक्षित हो जाता है । महाकवि जयदेव का प्रभाव भारतेन्दु जी पर स्पष्ट रूप से है और गीत गोविन्द के ही आधार पर गीत गोविन्दानन्द की रचना की गई । आपके अनुवादों में अपनी मौलिकता तथा सरसता विशेष रूप से पाई जाती है । यह कहा ही नहीं जा सकता कि वह अनुवाद है । संगीत, छंद, विचार अथवा कल्पना की श्रृंखला एक दूसरे से बँधी रहती और पद्य खण्ड स्वतन्त्र से विदित होते हैं । गीत गोविन्द के मंगलाचरण का

अनुवाद सवय्या छन्द में यहाँ उदाहरणार्थ दिया जाता है ।

मूलः— मेघमैदुरमंबरं बन भुवः श्यामा स्तमालद्रुमैः
नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिम राधेगृह प्रापये
इत्थं नद निदेश तश्च लितयोः प्रत्यध्व कुंजद्रुमं
राधा भाववयोर्ययन्ति यमुना कूल रहः केलपः

अनुवादः—मेघन तें नभ छाया रहे बन भूमि तमालन सों भई कारी
साँझ समै डरिहै घर पाहि कृपा करिकै पहुँचावहु प्यारी
यों सुनि नद निदेश चले दोउ कुंजन में वृषभानु दुलारी
सोई कलिदी के कूल इकन्त की केलि हरै भवभीति हमारी
भारतेन्दु जी का यह प्रसिद्ध छन्द महा कवि राजशेखर की कपूर मंजरी
के एक श्लोक के भावों का मानों मानव सजीव चित्रण हैः—

फूलोंगे पलास बन आगि सी लगाइ कूर
कोकिल कुहुकि कल सवद सुनावैगो
त्योंही सखी लोक सबै* गावैगो धमार धीर
हरन अबीर बीर सब ही उड़ावैगो ॥
सावधान होहु रे वियोगिनी सभारि तन
अतन तनक ही मैं तापन तें तपैगो
धीरज नसावत बढ़ावत विरह काम
कहर मचावत वसन्त अब आवैगो ।

[स्फुट कवितायें]

इसी प्रकार से अँग्रेजी, उर्दू तथा बंगला आदि से भी भारतेन्दु जी ने एक प्रकार से छायानुवाद ही किये हैं । और इन अनुवादों में मूल का सा ही आनन्द आता है ।

इस प्रकार से भारतेन्दु जी के काव्य को एक ओर तो हम धर्म की भावनाओं से ओतप्रोत पाते हैं, जिसमें कर्मकाण्ड तथा ईश्वरोपासना

*“हरीचंद” का भी पाठ मिलता है

और वैष्णव सम्प्रदाय की विधियों का पालन और उपास्य की आराधना की गई है। राधाकृष्ण की श्रृंगारिक लीलाओं में भारतेन्दु जी आत्म विभोर हैं।-

आगे चलकर रीतिकालीन प्रभाव से प्रभावित श्रृंगार काव्य में देव, बिहारी, मतिराम की भाँति नायिकाओं के विरह, श्रृंगार सयोग, नख-शिख आदि में लिप्त से हैं किन्तु यथासम्भव अश्लीलता बचाते तथा लोक लज्जा का ध्यान रखते हुये वह प्रेम भाव को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करते हैं।

तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित नवीन विचार धाराओं को लेकर जास्रति गीत गाने वाले भारतेन्दु जी भारत की दुर्दशा को देख राष्ट्रीयता का बीज वपन करते हैं। राजभक्ति से भारत की दुर्दशा का सुधारना उनका परम ध्येय रहा। काव्य में इन विचारों को लेकर समाज सुधार करने का बीड़ा सर्व प्रथम आपने ही उठाया। आप एक सगम के समान अवतरित हुये जहाँ रीतिकालीन काव्य का अन्त होता है और नवीन काव्य अथवा आधुनिक खड़ी बोली काव्य का प्रारम्भ होता है। देश प्रेम की भावना भारतेन्दु जी में कूट कूट कर भरी थी और उसे ग्रहण करके आपने अपना सब कुछ उसी में मिटा दिया।

(ब) काव्यलोचना

[पूर्ववर्ती प्रभाव] अ — प्राचीन शैली : (भक्ति और शृंगार काव्य):—अभी तक हमने भारतेन्दु काव्य की विभिन्न धाराओं का परिचय प्राप्त किया। अब आगे चल कर उनके काव्य कौशल की परीक्षा करने का प्रयत्न करेंगे। अपने तीव्र उद्गारों का आभास ही मधुर भाषा में वर्णन करने वाले को हम कवि कहते हैं। कवि की मौलिकता व्यक्तिगत होने में है, अर्थात् वह अपने ही सुख-दुख का वर्णन करता है, किन्तु एक बात का उसको सदैव ध्यान रखना पड़ता है, कि वह जिस समाज, वातावरण में रहता है उसके नियम आदि की उपेक्षा उसके काव्य में न हो। उसका यही गुण उसे अधिक से अधिक लोक प्रिय तथा समाज का प्रतिनिधि बनाता है।

एक आलोचक का कथन है कि पूर्ववर्ती और परवर्ती कवियों में फल फूल का सा सम्बन्ध है। जिस प्रकार फूल के बाद फल तथा फल के बाद फूल आते रहते हैं और इस प्रकार फल फूलों की एक श्रृंखला सी बन जाती है उसी प्रकार एक काल के कवि का प्रभाव दूसरे कवि के ऊपर पड़ता है और दूसरे का तीसरे पर इत्यादि। यह प्रभाव ज्ञात अथवा अज्ञात दोनों अवस्थाओं में हो सकता है—कहीं कहीं पर कवि जानबूझ कर और कहीं कहीं बिना जाने, केवल अपने प्रतिभा बल से ही, पूर्ववर्ती भावों का प्रयोग करता है। यह स्वाभाविक बात है और इसके लिए कवि को अमौलिक आदि नहीं कहा जा सकता। अस्तु ! यहाँ हम भारतेन्दु जी पर परिस्थितियों के प्रभाव सम्बन्धी एक दृष्टि डालेंगे।

भक्त कवियों की परम्परा में यद्यपि निर्गुणोपासना पहले आई किन्तु अन्त में जो विचार धारा प्रौढ़तम होकर पूर्ण रूप से विकसित हुई वह था भागवत धर्म। कृष्ण और राम सम्प्रदाय की उपासना ने जितना प्रचार पाया उससे यह प्रगट होता है कि निर्गुणवादियों को भी

राम का सहारा लेना पड़ा ।

इस भागवत धर्म में बड़ी सहृदयता थी, यद्यपि इसमें कर्मकाण्ड आदि का झमेला भी बहुत था । इतने पर भी यदि कोई कवि इस धर्म का अनुयायी हो, तब तो फिर कहना ही क्या ? उसका जीवन और काव्य सभी कुछ रस धारा से ओत प्रोत हो जाना स्वाभाविक ही है । सूर, तुलसी, मीरा, रसखान आदि न जाने कितने भक्त रत्न इस रस धारा में डूब कर पवित्र हुए थे । भारतेन्दु जी भी इसके अपवाद न थे । उनके हृदय में भी राधा कृष्ण के प्रेम का पवित्र स्रोत बह रहा था । वे भी इसी स्नेह रस में डूबे हुए थे । परन्तु जैसा कि विद्वानों का कथन है कि श्रीमद्भागवत ज्ञान की कसौटी है-इसमें कितने ही कर्मकाण्ड सिद्धान्तों, दार्शनिक विचारों का समावेश है, ये सब विचार पूर्ववर्ती कवियों में मिलते हैं । भारतेन्दु जी ने इन विचारों में कर्मकाण्ड विषयक बातों को बहुत प्रधानता दी है । उनके कितने ही माहात्म्य विषयक ग्रन्थ इसी आधार पर लिखे गये हैं ।

इसी प्रकार से भारतेन्दु जी पर श्री मद्भागवत की दार्शनिकता तथा लीला का प्रभाव भी स्पष्ट है । भागवत धर्मानुयायी भक्ति के प्रचारक चौर हर्षण, पनघट लीलाओं का गान करते हुए भी उसके दार्शनिक रूपक को ग्रहण करके ईश्वरोपासना की चरम सीमा पर पहुँच भावों में डूबे रहते हैं । भागवत धर्म बड़ा ही गूढ़ है । सक्षेप में उसका स्वरूप यह है :— भगवान् वैकुण्ठ आदि में तीन रूप से वास करते हैं । उसमें से स्वयम् रूप में भगवान् श्री कृष्ण हैं । तथा अन्य अवतारों में आपकी गणना की जाती है । यह अवतार तभी होता है जब धर्म की ग्लानि होती है । भगवान् मानव के रूप में पृथ्वी पर अवतार लेकर पीड़ा एवम् कष्टों को दूर करते हैं । किन्तु विशेष कारण तो भक्तों पर कृपा का ही कहना चाहिये । यह कृपा पुरुषावतार, गुणावतार तथा लीलावतार से होती है । इस प्रकार से पुरुष तथा प्रकृति के संयोग से सृष्टि रचना होती है । आगे चलकर सत्त्व-गुण से

ब्रह्मा, रजोगुण से विष्णु तथा तमोगुण से शिवजी का अवतार होता है। और फिर लीलावतार होते हैं जिनमें चौबीस अवतार हैं। पूर्णावतार कृष्ण ही सब कार्य व्यापारों के आश्रय है। इनकी प्रकट और अप्रकट दो प्रकार की लीलाएँ हैं। इनमें मध्य युग के कवियों ने प्रकट लीलाओं का ही वर्णन किया है। वृन्दावन में भगवान् अवतार के रूप में रास लीला करते हैं। पृथ्वी पर गोकुल, वृन्दावन, अयोध्या आदि वैकुण्ठधाम (गोलोक) की भाँति ही भगवान् को प्रिय हैं। भगवान् की प्रत्यक्ष महिमा एवम् भक्तवत्सलता आदि, हमें उनके ऐश्वर्य, त्रीड़ा, वशीध्वनि तथा वियोग के ही दृश्यों में प्राप्त होती है। ये अवतार की विशेषताएँ हैं। वंशीध्वनि को कोई भी आज तक समझ न सका। फिर ईश्वर प्राप्ति, श्रद्धा, साधु संग, भजन, क्रिया, अनन्त, निवृत्ति, निष्ठा, रुचि, आसक्ति भाव तथा प्रेम से होती है। प्रेम प्राप्त कर लेने के उपरान्त शान्त, दास्य सख्य, वात्सल्य तथा मधुर भावों का उदय होता है। श्री तुलसी दास जी के काव्य में हमें ऐश्वर्य तथा दास्य भाव का ही समावेश मिलता है। सूरदास में वात्सल्य, सख्य भाव की प्रधानता है और नन्द दास जी में मधुर भावों की प्रचुरता मिलती है। और उन्हीं उपकरणों से भगवान् को क्षमावान्, शरणागत वत्सल तथा करुणायतन पाते हैं। अन्त में मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। इस प्रकार प्रकट है कि सगुण का महत्व कितना है। सूरदास, नंदराम, तुलसी दास आदि में हमें यही भक्ति मिलती है।

हम कह चुके हैं कि भारतेन्दु जी भी वैष्णव घर्मावलम्बी तथा सगुणोपासक भक्ति कालीन कवियों की परम्परा से प्रभावित थे। यहाँ हम उनके काव्य खण्डों को लेकर देखेंगे कि उन पर अपने पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव किस प्रकार पड़ा था।

दादू जी अपने इष्ट देव के लिए लिखते हैं :—

“दरसन दे दरसन दे ही तो तेरी उकति न माँगो रे।

सिधि ना माँगौं रिधिना माँगौं तुम्हहीं माँगौं गोविदा।

जोग न माँगौ भोग न माँगौ तुम्हहीं माँगौ राम जी ।
 धरि नहि माँगौ बन नहि माँगौ तुम्हही माँगौ देव जी ।
 दादू तुम बिन और न जानै दरसन माँगौ देहु जी ॥
 तूलसी दास जी लिखते है :—

“अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहौ निरबान ।

जनम जनम रघुपति-भगति यह बरदान न आन ॥”

[मानस]

सूरदास जी की इस भावना में तो गोपिकाएँ भगवान के लिये
 दिन रात आँसू ही बहाया करती थीं। ईश्वर की चाह तो उनमें कूट
 कूट कर भरी थी :—

“कहा करौ सूनो यह गोकुल हरि विनु कछु न सोहाई ।”

अथवा

“सूरदास स्वामी के विछूरे राति दिवस उर सूलै ।”

उपर्युक्त कवियों से प्रभावित भारतेन्दु जी लिखते हैं :—

म तो श्री वल्लभ ही को जानै ।

अवन वल्लभ पद पंकज को वल्लभ ही को ध्यावै ।

हमारे मात-पिता गुरु वल्लभ और नहीं उर आनै ।

‘हरीचंद’ वल्लभ पद बल सों इन्द्रहुँ को नहि मानै ॥”

[प्रेम मालिका]

अथवा

“हम तो मोल लिये या घर के ।

दास-दास श्री वल्लभ कुल के चाकर राधा वर के ।

माता श्री राधिका, पिता हरि, वंशु दास गुन करके ।

हरीचंद तुम्हरे ही कहावत नहि विधि के नहि हर के ॥”

कहना न होगा कि महाप्रभु वल्लभाचार्य को कवि अपना उपास्यदेव ही
 मानता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेन्दु जी में भक्ति परम्परा
 की झलक स्पष्ट है।

जब भारत पर विदेशी आक्रमण शान्त हुए और मुगल बादशाहों ने अपना शासन व्यवस्थित कर लिया तब साधारण जीवन अधिक सुख पूर्ण हुआ। हिन्दू अथवा हिन्दी जनता इस समय भी अपने पूर्ववर्ती काव्यों की भाँति भक्ति रस में डूबी हुई थी। पर देश में उस भक्ति के ग्राहक अब कम थे। विलासी मुगल बादशाह तो ऐहिक प्रेम की ओर झुके हुए थे। अन्त में राधा कृष्ण की लीलाओ, रास मण्डलियों, गीत वाक्यों आदि के उद्देश्य परिवर्तित हो गए। यद्यपि रीति काल की कविता ऊपरी धार्मिकता के भावों से आवृत है किन्तु वास्तव में वह “राधिका-कन्हवाई सुमिरन को बहानो” मात्र कही जा सकती है। कवि अधिकतर दरबारी हो चले थे और इस कारण अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करना उनका मुख्य ध्येय था।

तुलसी के “कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लागि पछिताना।” सिद्धान्त को पालन करने वाले कवि श्रेष्ठ शायद ही कही दिखलाई पड़े। दरबारी वातावरण में, जहाँ सब प्रकार के कलात्मक सौन्दर्य का आदर था, भाव और भाषा का भी वैसा ही सस्कार हुआ। वृत्ति, अलंकार, रस, ध्वनि, आदि के चक्कर में पड़ कर काव्य शास्त्र की विवेचना करने का प्रयत्न तो हुआ किन्तु कविता की सच्चाई अथवा नैसर्गिकता पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया। बादशाहों तथा जनता को राजनीतिक अशान्ति के पश्चात् आनन्द तथा उपभोग का अवसर प्राप्त हुआ था। इसी से सभी का झुकाव विलासिता की ओर होना स्वभाविक था। अतएव रीतिकाल का प्रधान विषय श्रृङ्गार ही रह गया था। यद्यपि श्रृङ्गार का वर्णन इस काल में बहुत ही विस्तृत तथा सागोपांग हुआ और लकीर पीटने के लिए काव्यशास्त्र का सहारा भी बहुत कुछ लिया गया, परन्तु इस काव्य ने जनता को विलासिता में डूबो दिया। प्रेम तथा श्रृङ्गार का तात्पर्य केवल वासना ही रह गया। काव्य शास्त्रानुसार सब रस, अलंकार तथा अन्य काव्योचित गुणों का कला कौशल कविगण अपने अपने काव्य में दिखलाने लगे। परिणाम

यह हुआ कि कवियो एवम् जनता का ज्ञान क्षेत्र बहुत ही संकुचित हो गया । श्रृङ्गार तथा प्रेम के सिवाय अन्य विषयों का काव्य दुर्लभ हो गया । इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि इस समय का काव्य कुछ महत्त्व ही नहीं रखता वरन् दूसरी दृष्टियों से वह अपने ढग का ऊँचा साहित्य है । रीतिकाल के अन्तिम समय में घनानन्द सरीखे दो चार कवियो का उदय हुआ जिन्होंने प्रेम की सच्ची परिभाषा की । विलासिता से दूर, प्रेम की पीडा से सराघोर काव्य का दर्शन देव जैसे कवियो में भी होता है । महाकवि घनानन्द हमें इसी रीतिकाल में सच्ची प्रेम की परिभाषा देते हैं और भूषण वीर रस के काव्य से भारत की नस नस में बिजली भर देना चाहते हैं । रीतिकाल की परिपाटी का सम्पूर्ण दोष कवियो पर ही नहीं डाला जा सकता । वरन् यह तो उस समय के उस वर्ग की विचार धारा थी । जिसके बल पर कवियो की जीविका थी । फिर, कविगण और कुछ लिख ही क्या सकते थे ? भारतेन्दु जी धनी मानी व्यक्ति थे उनके पास पैसा था, अवकाश था-वे धर्म भी अवश्य थे, परन्तु रईस भी थे । रईसों के यहाँ कविता का बाजार गर्म रहता था । कुछ कवि उनके आश्रय पर खाते पीते थे ; नित्य दरबार लगता था - फिर वही समस्या पूर्तियाँ, वही श्रृङ्गारिकता, वही प्रचलित उपमेय उपमान उनके द्वारा भी प्रयुक्त हुए तो कोई आश्चर्य की बात नहीं ।

किन्तु भारतीय बलवे ने जनता की आँखें खोल दी । विचारधारा बदलने लगी । देश प्रेम की भावनाओं का प्रादुर्भाव हुआ । परिणाम स्वरूप हिन्दी साहित्य में भी काव्य का रूप बदलने लगा । काव्य का प्राचीन दृष्टिकोण बदला । फिर भी इतने दिन की पुरानी परम्परा की गति का समाप्त हो जाना सरल न था । प्राचीन परिपाटी के छन्द, कवित्त, सवग्या आदि उस समय के लोकप्रिय छन्द थे । उनमें परिवर्तन करने की आवश्यकता अभी नहीं जान पड़ी, हाँ विचार धारा अवश्य बदल गई । अतः काव्य बाह्य तो लगभग वही रहा किन्तु उसके अन्तर

में परिवर्तन होने लगा । रीतिकालीन परम्परा का प्रभाव भारतेन्दु जी में हम तब देखते हैं, जब उनकी सबय्या, कवित्त, सोरठे, दोहे, पद तथा गीतों आदि को रीतिकालीन विषयों और विचारों से पूर्ण पाते हैं । उनके काव्य पर देव, बिहारी, घनानन्द, मतिराम आदि उत्तम कवियों का बहुत गहरा प्रभाव था । यदि राधाकृष्ण की लीलाओं की ओट में वहाँ हमें काव्यशास्त्र के साथ विलासिता का दर्शन होता है तो यहाँ भारतेन्दु जी के काव्य में यद्यपि भिन्न भिन्न प्रकार की नायिकाओं का वर्णन नहीं मिलता फिर भी ऐहिकता के साथ श्रृंगार का वर्णन अवश्य मिलता है । घनानन्द जी के काव्य की भाँति ही हम भारतेन्दु जी को सबय्या में सच्चे प्रेमी के रूप में पाते हैं । भजन तथा पदों में सूरदास जी की शैली को अपनाया गया है । किन्तु श्रृंगारिकता का आधिक्य भारतेन्दु जी में है । राधा कृष्ण की प्रेम लीला का आगार सूरसागर तथा नन्द दास जी की रासपञ्चाव्यायी, दोनों के आधार को लेकर भारतेन्दु जी चले हैं किन्तु उनका काव्य श्रृंखलाबद्ध नहीं मिलता । अब हम यहाँ पर भक्तिकाल तथा रीतिकालीन काव्य परम्परा विषयक कुछ काव्य खण्डों को प्रस्तुत करेंगे और उनको मिला कर देखेंगे कि भारतेन्दु जी इन कवियों से कहाँ तक प्रभावित थे । सर्वप्रथम महाकवि देव जी की एक घनाक्षरी आस्वादन करेंगे । :—

“जाके मदमात्यो ना उमात्यो कहुँ कोउ जहाँ,

बूझ्यो उछल्यो ना तोर यो सोभासिन्धु सामु है ।

पीवत ही जाहि कोई मरयो सो समर भयो,

बौरान्यो जगत जान्यो, मान्यो सुखधाम है ।

चख के चखक भरि चाखत ही जाहि फिरि,

चाख्यो ना पियूख कछु ऐसो अभिरामु है ।

दंपति सरूप ब्रज औतरयो अनूप सोई,

‘देव’ कियो देखि प्रेम—रस प्रेम नामु है ॥”

और अब भारतेन्दु जी की भी घनाक्षरी देखिये:—

“सकल की मूलमयी, वेदन की भेदमयी,
 म्रथन की तत्त्वमयी वादन के जाल की ।
 मन बुद्धि सीमामयी सृष्टिहु की आदिमयी,
 देवन की पूजामयी जीवमयी काल की ।
 ध्यानमयी ज्ञानमयी सोभामयी सुखमयी,
 गोपी गोप गाथ ऋज भागमयी भाल की ।
 भक्त अनुराग मयी राधिका सुहाग मयी,
 प्राणमयी प्रेममयी मूरति गोपाल की ॥”

यहाँ हमें काव्य कौशल की तुलना नहीं करनी है। देव के सम्मुख भारतेन्दु जी की कल्पना केवल बच्चों का खेल लगता है। किन्तु केवल काव्य के मूलतत्त्व पर दृष्टि डाल करके हमें पता चलता है कि देव के ही समान ईश्वर की प्रेममयी मूर्ति की व्याख्या का दर्शन भारतेन्दु जी भी करना चाहते हैं।

बिहारी लाल जी के दोहों का प्रभाव भी भारतेन्दु जी पर था:—

“कचन तन धन बरन बर, रहयो रंग मिलि रंग ।

जानी जाति सुबास हो केसरि लाई आंग ॥”

भारतेन्दु जी के दोहे में अलंकारिता का साम्य बहुत कुछ स्पष्ट होता है:—

“पहिरि नवल चंपकली, चंपकली से गात ।

रस लोभी अनुपम भँवर हरि छिग क्यों नहि जात ॥”

अब भाषामाधुर्य के आचाार्य मतिराम जी का एक सबय्या देखिये:—

“रावरे नेह को लाज तजी अरुगेह के काज सबै बिसरायो ।

डारि दियो गुरुलोगन को उस गाँब चबाइ में नाम धरायो ।

हेत कियो हम जेतो कहा तुम तो मतिराम सबै बिसरायो ।

कोइ कितेक उपाय करौ कहूँ होत है आपनो पीउ परायो ॥”

भारतेन्दु जी का सबय्या भी इसी रंग में रंगा हुआ है:—

“जानि सुजान में पीति करी सहिकै जग की बहु भाँति हँसाई ।

त्यों हरिचंद जू जो जो कह्यो सो कर्यो चुप ह्वै करि कोटि उपाई ।
 सोऊ नही निबही उनसों उन तो रत बार कछु न लगाई ।
 सांची भई कहना वति वा अरी ऊँची दुकान की पीकी मिठाई ।”
 घनानंद जी के सबध्या की दो पक्तियाँ यथेष्ट होगी:—

“पहिले अपनाय सुजान सनेह सों क्यो फिर नेह को तोरियेजू ।

× × × ×

रस प्याय कै आप बढ़ाय कै आस पियास मे यो विष घोरिये जू ।”

भारतेन्दु जी की सबध्या मे:—

“धिक देह और गेह सबै सजनी जिहि के बस नेह को टूटनो है ।

× × × ×

तजि और उपाव अनेक अगी अब तौ हमको विष घूटनो है ।”

महात्मा सूरदास आँखों के विषय मे कहते हैं:—

अँखिनाँ अजान भई ।

एक अंग अवलोकत हरि को और हुती सो गई ।

यों भूली ज्यों चोर भरे घर चोरी निधि न लई ।

बदलत भोर भयी पछितानी कर ते छाडि दई ।

ज्यों मुख परि पूरन हो त्यो ही पहिलेइ क्यो न सई ।

सूर सकति अति लोभ बढ़यो है उपजति पीर नई ॥”

भारतेन्दु जी का पद देखिये:—

“सखी ए नैना बहुत बुरे ।

तब सों भए पराए हरि सों जब सों जाइ जूरे ।

मोहन के रस बस ह्वै डोलत तलफत तनिक दुरे ।

मेरी सीख प्रीत सब छाँड़ी ऐसे ये निगुरे ।

जग खीझ्यो बरज्यो पै ए नहि हठ सों तनिक भुरे ।

हरीचन्द देखत कमलन से विष के बुते छुरे ॥”

जहाँ सूरदास जी के पद मे ‘नई पीर’ पीड़ा देती है वहाँ हरिश्चन्द्र जी को बह “विष में बुते हुए छुरे” के आघात के समान लगती है । अपनी

अपनी अनुभूति है ।

भ.य सन्तुष्टः—हम पहले कह चुके हैं कि कवि पर अपने वातावरण का प्रभाव बना ही रहता है । एक छोटा बच्चा भी बचपन से अपने माता-पिता तथा सम्बन्धियों अथवा जिनमें वह उठता बैठता है, उन्हीं का अनुकरण करता है । सत्सार के प्रत्येक साहित्य में परिवर्ती कवियों के भावों को अपनाया है । कालिदास, सेक्सपियर, तुलसीदास आदि ने भी अपने पूर्ववर्ती कवियों के ही भाव लेकर काव्य रचना की है । अतएव उन भावों का ग्रहण करना अनुचित नहीं है किन्तु यदि उन उच्च भावों को अपनी शैली में रख कर उनके सौन्दर्य को बिगाड़ दिया जायगा तो अवश्य वह दोष एवम् अनाचार ठहराया जायगा । यदि पूर्ववर्ती कवि के भावों को लेकर कवि अपनी मौलिकता तथा चमत्कार से उसे सुसज्जित कर देता है तो यही उस कवि की प्रतिभा है । बात लगभग एक ही होती है किन्तु प्रत्येक व्यक्ति के कहने का ढक अलग-अलग होता है । भावों को अपनी शैली तथा कवित्व शक्ति के चमत्कार के साथ वर्णित करने वाला व्यक्ति चोर नहीं कहा जा सकता । वरन् यदि सौंदर्य सुधार, सौंदर्य रक्षा का विशेष प्रयत्न हमें मिलता है तो हम उसे श्रेष्ठ काव्य मानेंगे । पूर्ववर्ती कवि के भावों को लेकर उसके सौंदर्य को नष्ट कर देना ही निन्दनीय माना जाता है ।

भक्ति तथा रीतिकाल का प्रभाव हम भारतेंदु जी पर देख चुके । भाव सादृश्य में भारतेंदु जी की कल्पना तथा अभिव्यञ्जना अपना अलग ही महत्व रखती है । भारतेंदु जी स्वयं भावुक थे, उनके हृदय में रसानुभूति है । अतः दूसरे कवि का भाव उनकी निज की सरसता में डूब कर उनके हृदय से निकलता है । नवीन मुहाबिरे, भाषा की सरलता सरसता आदि उसे और भी सौंदर्य प्रदान करते हैं । कुछ उदाहरण हम दे आए हैं ।

(२) **रसात्मकताः—**“वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्” के आधार पर काव्य में रस की ही विशेषता होती है । यह रस श्रोता को अलौ-

किक आनन्द प्रदान करता है। बिना रस के काव्य का कोई महत्व नहीं। यह निश्चित है कि काव्य का ध्येय विभिन्न रसों द्वारा आनन्द का उत्पादन करना है। इसलिये सबसे पहले हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि रस क्या है इस बात को समझने का प्रयत्न करें।

भावुक हृदय बड़ा कोमल होता है। अनेक प्रकार के दृश्यों का प्रभाव उस पर बहुत शीघ्र पड़ जाता है। सुख-दुःख से पूर्ण घटनाओं से तुरन्त प्रभावित होता है। उसके वह मनोभाव, जो इन घटनाओं से प्रभावित होते हैं, मुख्य रूप से नौ कहे गये हैं—प्रेम, हँसी, उत्साह, शोक, क्रोध, घृणा, भय, आश्चर्य तथा निर्वेद। इन भावों के प्रभावित होने के लिये उचित वातावरण चाहिए। वह वातावरण रस परिपाक में सहायक अन्य वस्तुओं से उत्पन्न होता है। ये वस्तुयें हैं:—

विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव।

विभाव के दो भेद हैं—आलम्बन और उद्दीपन। आलम्बन वह है जिसके आधार पर भाव टिकता है—जैसे शृंगार में नायिका, नायक। उद्दीपन भाव को प्रोत्साहन देकर रस की पुष्टि में सहायता करता है। जैसे शृंगार में वाटिका, चन्द्र, शीतल वायु आदि।

अनुभाव वह भाव व्यजना है जो मुख मंडल पर व्यंजित होती है और हृदय के भावों को प्रकट करती है। रोना, क्रोध से होठ फड़-फड़ाना आदि।

संचारी भाव वह हैं जो बीच-बीच में उत्पन्न होकर रस की पुष्टि में सहायक होते हैं—जैसे शृंगार में खीझ का भाव।

इस प्रकार विभाव अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से स्थायी भाव रस बन जाता है। यह रस दर्शक को ही आनन्द देता है इसलिए उसी के हृदय में उसका निवास है।

शृंगार बहुत व्यापक रस है। कई रस इसके सहायक हैं और अधिक से अधिक संचारी भाव इसमें प्रयुक्त होते हैं। इस कारण यह रसरज कहा जाता है।

इस साधारण वर्णन के बाद अब हम भारतेन्दु जी के काव्य में रसों पर एक दृष्टि डालेंगे। रसों में श्रेष्ठ श्रृंगार रस का स्थायी भाव प्रेम या रति है। यह प्रेम अथवा रति का भाव संयोग और वियोग श्रृंगार की दोनों अवस्थाओं में पाया जाता है। भारतेन्दु जी का काव्य दोनों पक्षों में परिपूर्ण है।

भारतेन्दु जी का श्रृंगार वर्णन बहुत कुछ परम्परागत है। रीति कालीन परम्परा के आधार पर नायक नायिका को आलम्बन मानकर और ऋतु वर्णन आदि को उद्दीपन के रूप में लेकर उन्होंने संयोग और वियोग के चित्रों का वर्णन किया है। नायिका के निम्नलिखित चित्रण में कवि ने बड़ी ही मार्मिकता का सहारा लिया है। नायिका आलम्बन है। वर्षा ऋतु, झूला आदि उद्दीपन है। नायिका की विशेष क्रीडा आदि अनुभाव है। उमग आदि सचारी भाव है। इस प्रकार यह वर्णन पूर्ण रूप से रसात्मक है:—

‘हूलति हिये में प्रान प्यारे के विरह सूल,
फूलति उमग भरी झूलति हिडोरे पै ।
गावति रिझावति हंसावति सबन,
हरिचंद चाव चौगुनो बढ़ाइ धन घोरे पै ।
वारि वारि डारौ प्रान हँसनि मुरनि,
बतरान, मुसक्यान कजरारे दृग डोरे पै ।
ऊनरी घटा में देखि दूनरी लगी है आहा,
कैसी आजु चूनरी फबी है मुख गोरे पै ।

वयस्सन्धि का चित्र भी सुन्दर है:—

“सिसुताई अजौं न गई तनतै तउ जीवन जोति बंटोरै लगी ।
सुनिकै चरचा ‘हरिचन्द’ की कान कछुक दै भौह मरोरै लगी ।
बचि सामु जेठानिन सों पिय तें दुरि घूँघट में दृग जोरै लगी ।
दुलही उलही सब अगन तै दिन द्वै तें पियूप निचोरै लगी ॥”

[प्रेम माधुरी]

इसमें भी मुग्धा नायिका आलम्बन है जिसके हाव भाव का वर्णन कवि ने बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। परकीय प्रेम को भी उन्होंने कहीं-कहीं इस श्लोक में अपना लिया है।

“यह सावन सोक नसावन है, मन भावन या मै न लाजै करौ ।
जमुना पै चली सु सबै मिलि कै अरु गाय बजाय कै सोच हरौ ।
इमि भाखत है ‘हरिचन्द’ पिया अहो लाडिली देर न यामै करौ ।
बलि झूलो झुलावो झुको उझको इह पाखै पतिव्रत ताखै धरौ ।”

[प्रेम माधुरी]

उक्त छन्द में उद्दीपन की तीव्रता के कारण मर्यादा के उल्लंघन का आदेश दूती के मुख से दिला कर सीमा का अतिक्रमण कराया गया है।

वियोग श्रृंगार के वर्णन प्रायः अधिक मार्मिक होते हैं। निराशा की भावना उनमें अधिक स्थायित्व पैदा कर देती है। वियोग की असह्य वेदना के सम्मुख प्राणों को जो उपालम्भ दिया गया है वह बड़ा ही हृदयग्राही है:—

“सब आस तो छूटी पिया मिलबे की न जानै मनोरथ कौन सजै ।
हरिचन्द जू दुःख अनेक सहै पै अड़े है टरै न कहूँ को भजै ।
सब को निरसक ह्वै बैठि रहै सो निरादर हूँ सो कछु न लजै ।
नहिँ जान परै कछु या तन को केहि मोह तेँ पापी न प्रान तजै ॥”

[प्रेम माधुरी]

अथवा

“जब ते बिछुरे नदनंदन जू तब ते हिय में बिरहागि बरै ।
दुख भारि बढ़यो सो कहो केहि सों हरिचन्द को आइ कै दुःख हरै ।
वह द्वारिका जाइकै राज करै हमै पूछिहै क्यों यह सोच परै ।

मिलिबो उनको कछु खेल नहीं तू वृथा मन क्यों अभिलाष करै ॥”
नायिका की निराशा चरम सीमा तक पहुँच चुकी है। द्वितीय सवय्या में मन को धीरज कितने दीन शब्दों में दिया जा रहा है किन्तु प्रथम

मे तो पापी प्राणो को कोसा गया है । विरहावस्था की पराकाष्ठा यही प्रदर्शित होती है । विप्रलम्भ—श्रृंगार का सच्चा स्वरूप हमे यहाँ प्राप्त हो जाता है । नायिका के दुःख से तथा उसकी बेबसी से दो आँसू टुलक पड़ते हैं और यही कवि की सफलता है ।

श्रृंगार के बाद भारतेन्दु जी ने वीर रस को काफी महत्व दिया है । परिस्थितियों के अनुकूल उनके पास इसके लिये काफी मसाला भी इकट्ठा था । राजभक्ति में राजा की सेना के विजयी होने पर, देशभक्ति में प्राचीन गौरव और वीरो का स्मरण करके और वर्तमान गिरी दशा को उठाने के लिये जनता को प्रोत्साहित करते हुये उन्होंने बार बार उत्साह पूर्ण वाक्य कहे हैं । इस प्रकार कही इनके आलम्बन वीर ब्रिटिश सैनिक है, कही भारतीय वीरो के आश्रय पर काव्य रचना की गई है और कही साधारण जनता को लक्ष्य करके प्रोत्साहन के गीत गाए गए हैं । ऐसे आलम्बन का एक चित्र यह है:—

सुनत वीर इक वृद्ध नरन के सन्मुख आयो ।
स्वेत सिंह जिमि गुहा छाँडि बाहर दरसायो ॥
अरुन बदन ढिग सेत केस सुन्दर दरसायो ।
वीर रसहि मनु घेरि रह्यो रस सांत सुहायो ॥
कटि पै भाथा कध धनुष कर मै कर बाला ।
परी पीठ पै ढाल गुलाबी नैन बिसाला ॥
सिंह ठवनि निरभय चितवनि चितवत समुहाई ।
तन दुति फैली छ्ति परत घरनी पर आई ॥

भोज पूर्ण युद्ध प्रयाण का सजीव चित्रण इन पक्तियों में मिलता है:—

पहिनि जिरह कटि किसि सबै तौलत चले कृपान ।
लै बँदूक साधत चले लच्छ वीर बलवान ॥
निरभय पग आगहि परत मुख तें भाखत मार ।
चले वीर सब लरन हित मिसरिन सों इकबार ॥
चंद्र-सूर्य-बंसी जिते प्रमर, अनल, चौहान ।

घोड़न चढ़ि आए सबै छत्री वीर मुजान ॥

सुमिरि सुमिरि छत्री सबै निज पुरुषन की बात ।

घाए ऐठत मोछ निज उमगि बीर रस गात ॥

दूसरे उदाहरण में स्थाई भाव उत्साह के साथ-साथ उसके सभी आवश्यक अंग प्राप्त होते हैं । मारू बाजो का बजना उद्दीप्त है । अलक्ष्य शत्रु ही अलम्बन है । मार-मार पुकारना, मोछे ऐठना, आदि अनुभाव है और पूर्वजों की स्मृति सचारी है । इस प्रकार रस सर्वाङ्ग पूर्ण है ।

(३) करुण रस भारतेन्दु जी का बड़ा ही मार्मिक है, यद्यपि प्राचीन और नवीन सभी विषयों को लेकर कवि ने रचनाये की है किन्तु देश-दशा, पराधीनता सामाजिक पतन आदि को लेकर कवि ने बड़ी मार्मिक उक्तियाँ कही है । निराश हृदय का अन्तिम आश्रय भगवान की शरण है—अन्त में वह उसीका सहारा लेता है, दुःख में वह पुकारता है:—

कहाँ करुना निधि केसव सोए

जागत नेकु न यदपि बहुत विधि भारत वाभी रोए

इक दिन वह जो बन तुम छिन नहि भारत हिन विसराए

इत के पसु गज को आरत लखि आतूर प्यारे घाए ।

हाय सुनत नहि निठुर भए क्यो परम दयाल कहाई

सब बिधि बूझत निठुर लखि निज देसहि लेहु न अबहुँ बचाई ॥

(४) हास्य रस भारतेन्दु जी का बहुत ही प्रिय रस रहा है । उनका विनोदी जीवन अपनी पूर्ण सत्यता के साथ काव्य में उतर आया है । यह हास्य केवल मनोरंजन मात्र की सामग्री हो, ऐसा नहीं है । 'अन्धेर नगरी' आदि नाटक उन्होंने समाज की बिगड़ी दशा पर व्यंग्य वाण बरसा कर उसे सुधारने के प्रयत्न में ही लिखे थे । 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' भी इसी प्रकार की चीज है ।

'अन्धेर नगरी' अनबूझ राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा' के पीछे अन्यायपूर्ण शासन पर कठोर व्यंग्य छिपा हुआ है । उनके

अनुसार तो :—

सेत सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपास ।

ऐसे देस कुदेस मे, कबहुँ न कीजै बास ॥

उनके चूरन चने के लटके इसी प्रकार के व्यंग्य से परिपूर्ण है- कही वह उन बर्गालियों को चना खिलाते हैं जिनकी 'धोती ढीली ढाली' है और कही उन साहब लोगो को चूरन खिलाते हैं जो 'सारा हिन्द हजम कर' जाते हैं । कही पर उनके बाण चापलूसों की ओर प्रेरित हैं :—

“उभरा जो कहे रात, तो हम चाँद दिखा दें ।

रहना है सिफारस से भरा जाम हमारा ॥”

अथवा उन आलसियों को हिलाने डुलाने का प्रयत्न करते हैं जिनका सिद्धान्त है :—

“दुनियाँ मे हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा

मर जाना पे उठके कही जाना नही अच्छा

बिस्तर पे मिस्ल लोथ पड़े रहना हमेशा

बन्दर की तरह धूम मचाना नही अच्छा

सिर भारी चीज है इसे तकलीफ हो तो हो

पर जीभ बिचारी को सताना नही अच्छा ॥” इत्यादि ।

इसके अतिरिक्त कही कही पर भारतेन्दु जी का हास्य बिलकुल मुक्त है जहाँ पर वे उपदेश आदि से दूर हैं । कही कहीं थोड़ा बहुत अश्लील भी हो गये हैं । किन्तु साधारण दृष्टि से उनका हास्य बहुत सयत् और शिष्ट है ।

उक्त चार रसों के अतिरिक्त शेष रसों का प्रयोग भारतेन्दु जी ने बहुत प्रधानता से नहीं किया है, किन्तु थोड़ा बहुत प्रयोग सभी का मिलता है और संक्षेप में उनका उल्लेख किया जाता है :—

(५) वीभत्स रस का प्रयोग 'सत्य हरिश्चन्द्र' में सुन्दर मिलता है । स्मशान का वर्णन रसात्मक है :—

गिद्ध जाध कह खोदि खोदि के मास उचारत

स्वान आंगुरिन काटि के खान विचारत ॥

(६) और भयानक रस के भय स्थाई का बड़ा ही आतंकपूर्ण वर्णन निम्न पक्तियों में मिलता है :—

रोअत सियार गरजत नदी स्वान भूँकि डरवावही

सग दादुर झीगुर रुदन-धुनि मिलि स्वर तुमुल मचावही ।

यहाँ वर्षा की अन्धकारमयी रात्रि में श्वानों का भूँकना, स्यारों का रोना, दादुर झीगुरों का चीत्कार और साथ में नदी नाद गर्जन अत्यन्त भयप्रद वातावरण उत्पन्न करता है—वास्तव में भयानक रस का बड़ा सुन्दर परिपाक यहाँ पर हुआ है ।

(७) रौद्र रस का प्रयोग प्राचीन कथा के प्रसंगों तथा नवीन विषयों के सम्बन्ध में भी मिलता है । इसका स्थायी भाव क्रोध है । शत्रु के सम्मुख न होने पर भी इसका प्रदर्शन होता है — इस उदाहरण में अर्जुन का भीम के प्रति क्रोध प्रत्यक्ष है :—

तोरि गदा सों हृदय दूष्ट दुस्सासन केरो

तासों ताजो सद्य रुधिर करि पान घनेरो

ताही कर सों कृष्ण की बेनी बँधवाई

भीमसेन ही सों बदलो लै है चुकवाई ॥

(८) अद्भुत के उदाहरण प्रायः ऐसे स्थलों पर मिलते हैं जहाँ महापुरुषों के अलौकिक कार्यों का वर्णन है । ऐसे स्थल प्रायः देवी देवताओं अथवा अलौकिक पुरुषों के प्रसंग में ही आते हैं— अतः प्राचीन विषयों से सम्बन्ध रखने वाले काव्य में, चाहे वह मौलिक हो या अनुवादित, अद्भुत रस का समावेश पाया जाता है । उदाहरण के लिये अर्जुन की ध्वजा पर स्थित वायू पुत्र हनुमान का यह वर्णन उन की आश्चर्यजनक लीलाओं का चित्रण करता है :—

“सागर परम गँभीर नद्यो गोपद सम छिन मैं ।

सीता विरह मिटावन की अद्भुत मति जिन मैं ।

जारी जिन तृन फूम हूस सी लंका सारी ।
 रावन गरव मिटाई हने निसिचर-बल भारी ।
 श्री राम प्रान सम, बीरवर, भक्तराज, सुग्रीव प्रिय ।
 सोइ वायुतनय धुज बैठि कै गरजि डरावत शत्रु हिय ॥

(९) शान्त का प्रत्यक्ष वर्णन भारतेन्दु जी में अधिक नहीं प्राप्त होता है। हरिश्चन्द्र नाटक में श्मशान वैराग्य के दृश्य मिलते हैं—
 उदाहरणार्थ :—

सोई मुख जेहि चन्द बखान्यौ ।
 सोई अग जेहि प्रिय करि जान्यौ ।

× × ×

सोई छविमय अग सुहाए
 आजु जीव बिन धरनि सुहाए
 कहाँ गई वह सुन्दर सोभा
 जीवत जेहि लखि सब मन लोभा । इत्यादि-

इस श्मशान दृश्य के दर्शन से हृदय में वैराग्य भाव उत्पन्न होता है और संसार की ओर से विरक्ति का भाव मन में आता है।

प्रेमी भक्त होने के कारण भारतेन्दु जी ने अधिकतर देव रति विषयक काव्य ही अधिक लिखा है— शान्त की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया ।

इन नव रसों के अतिरिक्त हिन्दी के आचार्यों ने वात्सल्य को भी रस माना है। हिन्दी में महात्मा सूर ने तो इस पर अपने काव्य का एक विशाल अंश ही लिख डाला है। अन्य कवियों ने भी वात्सल्य पर लिखा है। भारतेन्दु द्वारा किया हुआ रुक्मिणी नन्दन बालकृष्ण का चित्रण यहाँ पर अनुपयुक्त न होगा :—

श्री रुक्मिणी-नन्दन, जय जगबंदन

बाल कृष्ण सुख दाम ।

सुन्दर रूप नयन रतनारे

भक्तन पूरन काम ।

रस वात्सल्य-करन अनुभव नित

विरह विधूनन हरि मुग्न नाम ।

हरीचंद विठ्ठल सुखदायक प्रिय

रूप अभिराम ॥

भारतेन्दु जी के वृहत् काव्य में प्रायः सभी रस प्राप्य हैं। यही नहीं इन रसों की सम्पूर्ण शास्त्रीय सूक्ष्मता भी वर्तमान है किन्तु उसका अधिक सविस्तार वर्णन हमारे लिये स्थानाभाव के कारण सम्भव नहीं है।

मिल्टन ने कविता की परिभाषा यों दी है कि कविता सादी हो, जोश से भरी हुई हो और असलियत से खाली न हो। वास्तव में भारतेन्दु जी की कविता सरल है, आडम्बरो से धून्य है— उसमें प्रभाव डालने की शक्ति है, वह ओज पूर्ण है और उसकी असलियत इसी में है कि वह जीवन से सम्बन्ध रखती है, उसमें बनावट नहीं है। यही कारण है कि भारतेन्दु जी का काव्य श्रेष्ठ है। ओज, प्रसाद और माधुर्य तीनों गुण उसमें विद्यमान हैं। एक ओर यदि वे श्रृंगार लीला की सत्यता का जीवन में अनुभव करते हैं तो दूसरी ओर उनका हृदय देशदशा को देख कर करुणा से उमड़ पड़ता है, और यह करुणा बनावटी नहीं है, उसकी प्रभावशालिता का यही कारण है। उनके हृदय का वीरत्व भी प्रसूत है और हास्य के तो वे अबतार ही थे— कहने का अर्थ यह है कि उनका काव्य उनके जीवन की भाँकी है जिसमें हृदय पक्ष के अनेक चित्र चित्रित हैं, फिर भला उसकी सफलता में सन्देह हो ही कैसे सकता है।

“कलात्मकता”

(३) अलंकारिकता :— रीतिकालीन कवियों ने संस्कृत आचार्यों के अनुसार अलंकार, रस निरूपण प्रारम्भ किया था। काव्य में अलंकार तथा चमत्कार का महत्व विशेष कर इसी काल से प्रारम्भ हुआ। काव्याग निरूपण का कार्य सर्वप्रथम महाकवि केशवदास जी ने प्रारम्भ

किया । अलंकार, रस, ध्वनि, नायिका—भेद रीति परिपाटी आदि के भेद उपभेद आदि का भी विवेचन हुआ था । हिन्दी के अलंकार ग्रन्थ अधिकतर “चंद्रलोक” और “कुलयाचन” के अनुसार निर्मित हुये । साथ ही कुछ ग्रन्थों में “काव्य प्रकाश” और “साहित्य दर्पण” का भी आधार पाया जाता है । पिगल अथवा छंद शास्त्र पर की विस्तृत लक्षण लक्ष्य ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ । संस्कृत काव्य में रस, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति आदि काव्य के सभी गुणों पर विचार किया गया था । किन्तु हिन्दी में अलंकार को छोड़ कर अन्य गुणों पर विशेष जोर नहीं रहा । वरन् काव्य की व्याख्या के ही अन्तर्गत इन गुणों का समावेश साधारण रूप में होता था । नायिका—भेद, अलंकार तथा रस निरूपण मुक्तक रूप में भी बहुत कुछ होता था । यह वर्णन पट नटु के अन्तर्गत भी हुआ है । इस प्रकार ऐहिक भावनाओं में ओग प्रोत काव्य का क्षेत्र सकुचित हो गया । मानव शरीर के सदृश के सामने प्रकृति सौन्दर्य का प्रभाव इन कवियों पर नहीं पड़ा । प्रकृति का जो कुछ वर्णन हुआ वह उद्दीपन के रूप में । भाषा भी मिश्रित रही, कारण विशेष यह था कि मुसलमानी राज्य का स्थापन हो चुका था और देश में उथल पुथल हो चुकी थी । उसी से भाषाओं का मिश्रित होना अस्वाभाविक न था । हाँ, इस मिश्रण से उसमें साहित्यिकता अवश्य आ गई । काव्य में चमत्कार प्रदर्शन का ढंग प्रारम्भ हो गया था और शब्दालंकार, दृष्टिकूट तथा चित्र काव्य आदि के कारण थे । कवियों की यह एक प्रकार की दिमागी कसरत थी । शब्दों के हेर-फेर से अथवा जोड़ने घटाने से काव्य का अर्थ पहेलियों के समान खुलता था । राज दरबारों में इस चातुर्य का प्रदर्शन होता था । कविगण एक दूसरे से बाजी मार ले जाने के लिये अधिक से अधिक अलंकार, चमत्कार, शृङ्गार की भावनाओं से भीगी हुई कविताओं की रचना करते थे । आशुकवित्व अथवा समस्या पूर्तियाँ भी ऐसी चमत्कार शक्ति की कसौटी थी । कवित्त, सबय्या, दोहा आदि इस काल के कवियों के प्रिय छंद थे । भक्त जनता पदों, भजनों की

और आकृष्ट थी। किन्तु गीति काव्य की यह शैली भक्तिकाल से इस काल को प्राप्त हुई थी, जो अब तक वर्तमान है। सवय्या में शृङ्गार प्रेम, भक्ति, तथा करुणा आदि कोमल रसों का वर्णन अच्छा होता था। घनाक्षरी, कवित्त, मे सभी रस उत्तमता से वर्णित हो सकते हैं।

भारतेन्दु जी की कलात्मकता हमको इसी पृष्ठ भूमि पर मिलती है। यहाँ पर हम उनकी काव्य कला के मुख्य अंगों के दर्शन करेंगे।

अलंकार भाषा के स्वाभाविक गुण हैं। वाक्य के चमत्कारपूर्ण कथन में समय-समय पर जिस वक्रता का उपयोग किया जाता है वही अलंकार है। इन अलंकारों से साधारण बातचीत की सुन्दरता बढ़ जाती है और कवि की जान अथवा अनजान में इन अलंकारों का प्रयोग होता ही रहता है और काव्य में सुन्दरता की वृद्धि होती है। शब्द और अर्थ वाक्य के प्रधान अंग हैं—इन्हीं शब्द और अर्थ को अलंकृत करने वाले अलंकार शब्दालंकार और अर्थालंकार कहे जाते हैं। कुशल कवि के काव्य में ये अलंकार स्वाभाविक रूप से आ जाते हैं, उसे इनके लिये मस्तिष्क पर जोर नहीं देना पड़ता। जो कवि दिमाग खरोच कर अलंकार निकालते हैं उनके काव्य में सौन्दर्य की वृद्धि के स्थान पर उसका नाश ही होता है। भाषा तो बिगड़ती ही है, अलंकार प्रदर्शन की भोक में भावों की भी हत्या हो जाती है।

रीतिकाल के कवियों की असफलता का प्रधान कारण यह था कि वह एक परिपाटी को पूरा करने के चक्कर में पड़े रहते थे। इसके कारण उनकी विचार धारा स्वतन्त्रता से नहीं बढ़ पाती थी। उनको एक बंधे हुये मार्ग पर सोचना आवश्यक हो जाता था। जिन कवियों ने ऐसा नहीं किया उनको पर्याप्त सफलता मिली है। घनानन्द, आलम आदि कवि ऐसे ही थे। बिहारी भी स्वतन्त्र कवि थे जिसके कारण वे सफल हुये। कुछ प्रतिभाशाली कवि ऐसे भी थे जिन्होंने परम्परा में पड़ कर भी उत्तम कविता की जैसे देव, मतिराम आदि।

भारतेन्दु जी के अलंकार बहुत ही स्वाभाविक रूप से प्रयुक्त हुये हैं

यद्यपि उन पर रीतिकालीन परिपाटी की छाप मिलती है किन्तु वह केवल नाम मात्र की ही है। शब्दालंकार में तो शास्त्रीय परम्परा का प्रतिपालन आवश्यक होता ही है परन्तु अर्थालंकार उनके यह नहीं विदित होने देते कि उनमें रचनात्र भी प्रयास किया गया है। अतएव आपका अलंकार प्रयोग बहुत उपयुक्त था तथा अलंकारों में काव्य के सौन्दर्य को सदा बढ़ाया ही है।

नीचे भारतेन्दु जी का एक छंद दिया जाता है। इसमें अनुप्रास श्लेष स्मरण स्वभावोक्ति आदि अनेक अलंकारों का एक साथ समावेश जितना सुन्दर हुआ है साथ ही उतना ही कवि द्वारा इन अलंकारों का प्रयोग प्रयत्न प्रसूत नहीं प्रतीत होता है। छंद में भाषा का प्रवाह भी अबाध गति से बहता है:—

देखि घनश्याम घन स्याम की सुरति करि
जिय में बिरह घटा घहरि घहरि उठै
त्योही इन्द्र धनु बग माल देखि बन माल
मोती लर पिय (की) जिय लहरि लहरि उठै
हरीचंद मोर पिक धुनि सुनि वशी नाद
बाकी छबि बार बार छहरि छहरि उठै
देखि देखि दामिनी की दुगुन दमक पीत
पट छोर मेरे हिय फहरि फहरि उठै

दूसरी पंक्ति में 'की' अक्षर का अधिक समावेश पता नहीं कैसे हो गया है। किन्तु भाव प्रदर्शन में कोई बाधा नहीं आने पाई है। महा कवि देव की काव्य कुशलता का प्रभाव इस पर स्पष्ट रूप से पड़ा हुआ प्रतीत होता है।

दूसरे उदाहरण में बिरह हिंडोरे का रुचिर रूपक देखिये:—

पल पाटुली पे डोर प्रेम की लगाय चारु,

आसा ही के खम्भ दोग गाड़ कै धरत हैं

भुमका ललित काम पूरन उछाह भरयो,

लोक बदनामी भूमि भालर भरत है
 हरीचंद आंसू दृग नीर बरसाइ प्यारे,
 पिया गुन-गान सो मलार उचरत है
 मिलन मनोरथ के भोक्त बढ़ाइ सदा,
 विरह हिडोरे नैन भूल्योई करत है ॥

उक्त छंद सांग रूपक का एक सुन्दर उदाहरण है ।

अब एक लोकोक्ति अलंकार का उदाहरण देखिये:—

प्राण पियारे तिहारे लिये सखि बैठे है देर सो मालती के तर
 तू रही बात बनाय मिलै न वृथा गहि कै कर सो कर
 तोहि घरी छिन बीतत है हरिचंद उतै जुग सो पलहू भर
 तेरी तो हाँसी, उतै नहि धीरज, नौ घरी भद्रा घरी मे घर ॥

अथवा

एक जो होय तो ज्ञान सिखाइये कूप ही मे यहा भाँग परी है ।
 उपरोक्त उदाहरणों के रेखाङ्कित अंशों से स्पष्ट है कि भारतेन्दु जी का
 भाषाधिकार कितना प्रबल था । इतनी लोकोक्तियों का ऐसा प्रवाहपूर्ण
 प्रयोग एक सत्कवि द्वारा ही हो सकता है । इन उदाहरणों के अतिरिक्त
 लगभग सभी प्रमुख अलंकारों का समावेश आपके काव्य में प्रचुरता के
 साथ हुआ है । स्थानाभाव के कारण अधिक उदाहरण नहीं दिये जा
 सकते । केवल दो एक ही देकर सन्तोष करेंगे । पावस के आगमन का
 हेतु कवि ने यह उत्प्रेक्षित किया है मानो वह श्रमती राधा को जगाने
 आया हो:—

जगावन ही मनु पावस आयो ।

भयो भोर पिय उठौ उठौ कहि मधुरे गरजि सुनायो ।

बोले भोर कोकिला कुहिके दादुर रोर मचायो ।

दामिनि दमकी मङ्गल बन्दी जन मनु नाच्यौ गायो ।

छोटी बूँद बरसि चौंकाए आलस सबै मिटायो ।

हरीचंद पिय प्यारी को इन बेगहि आज जगायो ।

प्रकृति के मध्य में नृत्य सज्जीत की, यह हेतुप्रेक्षा बहुत सुन्दर बन पड़ी है। इसी प्रकार प्रातः समीरन को कवि अनेक रूपों में देखता है जिससे उत्पन्न अलंकार चरितार्थ होता है:—

“दियोगिनी-विदारन मन्द मन्द गान
बन गुहा बास करै सिंह प्रातः पौन ॥
नाचत आवत पात पात हिहिनात ।
तुरग चलत चाल पवन प्रभात ॥
आवै गुजरत रस फूलन को लेत ।
प्रातः को पवन भौर सोभा अति देत ॥
सौरभ सुभद धारा ऊँचो किये मस्त ।
गज सो आवत चलयौ पवन प्रसस्त ॥

इस प्रकार भारतेन्दु जी का प्रायः सभी काव्य अलंकारिक है, उसकी अलंकारिकता उसके सौन्दर्य में विशेष वृद्धि करती है।

भारतेन्दु जी ने चित्र काव्य भी किया है, जो एक उनकी मौलिकता से पूर्ण नवीन वस्तु है। उसके भी दो एक उदाहरण यहाँ पर अनुप-युक्त न होंगे:—

मनोमुकूल माला में विकटोरिया की वन्दना करते हुये कवि ने लिखा है:—

JKवल (जे केवल) तुव दास है, नास तिनकी R (आर)
बढ़ै सY (सवाई) तेज नित, Tको (टोको) अचल लिलार ॥
(चेरे) (से) (हेरे) सबै, (तेरे) बिना क. (कलाम)
गलै (दाल) नहि सत्रु की तुव सनमुख गुनधाम

अथवा

करि वि४ (विचार) देख्यौ बहुत
जग बिनु रस (दोस) न १ (न एक)
तुम बिनु हे विकटोरिया
नित ९०० (नव सौ) पथ टेक ॥ ३

स्पष्ट है कि इनमें केवल दिमागी कसरत है और शब्दों का खिलवाड़ है, फिर भी बुभौव्वल पहेलियों की तरह इनका अपना आकर्षण है।

नायिका भेद तथा नखशिख.— परिपाटीके अनुसार भारतेन्दु जी ने नायिका भेद तथा नखशिख का भी वर्णन किया है। उन्होंने भक्ति काव्य में अपने इष्ट देव-देवी के चरण चिन्हों में रथ, हथ, शख, चक्र, गदा, पद्म आदि का सागोपाग वर्णन धार्मिक ग्रंथों के आधार पर किया है। बज्र, बरछी, तलवार, छत्र, सर्प, शैल आदि का भी वर्णन है। शृङ्गारिक, काव्य में नायिका तथा नायक के विभेदों के साथ काव्य क्षेत्र का विस्तार किया गया है। भक्ति काव्य में शास्त्रीय आधार को लेकर भारतेन्दु जी भगवान के चरण में स्थित चिन्ह, स्वस्तिक, का भाव वर्णन करते हैं :—

जे निज उर में पद धरत असुभ तिनहै कहूँ नाहि ।

या हित स्वस्तिक चिन्ह प्रभु धारत निज पद माहि ॥

इसी प्रकार से शख चिन्ह का वर्णन देखिये :—

भक्तन की जय सर्वदा यह दरसावन हेतु ।

शख चिन्ह निज चरन मैं धारत भव-जल सेतु ॥

यह तो देव काव्य हुआ, मानवीय काव्य में नायिका भेद तथा नायिकाओं के नखशिख का वर्णन भी विस्तृत हुआ है किन्तु भारतेन्दु जी ने लक्ष्य लक्षण ग्रंथों की रचना के घेरे में अपने को नहीं बाँधा है। उनकी वृत्ति मुक्त है। उनके काव्य में नायिका भेद तथा नखशिख के अन्तर्गत बिखरे हुये बहुत से उपभेदों के उदाहरण प्राप्य हो सकते हैं। सर्वप्रथम नायिका भेद के उदाहरण दिये जाते हैं। भारतेन्दु जी ने स्वकीया के सात्विक वर्णन बड़े ही सुन्दर किये हैं। उनमें पारिवारिक जीवन की गम्भीरता के दर्शन भी पूरे तौर से होते हैं। भले ही उनकी भावुकता अपने पूर्ववर्ती कवियों से प्रेरित हो, परन्तु उन्होंने अपने शब्दों में उन्हीं भावों को रख कर किसी प्रकार भाव-हानि नहीं की है। सेनापति, केशव, के भावों को भारतेन्दु जी की वचन विदग्धा के मुख से फिर सुनिए, जो

गमनोद्यत प्रिय को शब्द चातुरी से रोक लेना चाहती है :—

“रोकहिं जो तो अमंगल होय, औ प्रेम नसै, जो कहै पिय जाइये ।

जो कहै ‘जाहुन’ तो प्रभुता, जो कछू न कहै तो सनेह नसाइये ।

जौ हरिचंद, कहै तुम्हरे बिन, जी है न तौ यह क्यो पतियाइये ।

तासों पयान समै तुमते हम का कहै प्यारे, हमै समुझाइये ॥”

वास्तव मे वचन विदग्धा की वाक् चातुरी ने नायक के सम्मुख जो समस्या पेश कर दी है उसका मुलभाना सरल नहीं है ।

वियोग के चित्रो मे भी मर्म पीडा के बडे सुन्दर चित्रमिलते हैं-निराशा पी जन्य का चित्रण प्रोपितपतिका के इस विलाप मे बहुत सफल हुआ है ।

अरे पौन सुख मौन सबै थल गौन तुम्हारो ।

क्यो न कहौ राधिकारीन सो मौन निवारो ।

अहे भँवर तुम श्याम रग मोहन व्रत धारी ।

क्यो न कहौ व निठुर श्याम सो दशा हमारी ॥ इत्यादि ।

वियोग की यह प्रलाप दशा हार्दिक पीडा को व्यक्त करने मे पूर्ण रूप से सहायक हुई है और गोपियो का प्रगाढ़ प्रेम अबाध गति से उनके मुख से प्रभावित हो उठता है ।

इसी प्रकार चन्द्रावती में खण्डिता के उपालम्भ का वर्णन देखिए :—

“काम कछू नहीं यासो हमें, सुख सो जहाँ चाहिए रैन बिताइये ।

पै जो करै बिनती हरिचंद जू, उत्तर ताको कृपा कै सुनाइये ।

एक मतो उन सो क्यो कियो, तुम, सोउ न आवै जो आप न आइये ।

रूसिबे सों पिय प्यारे तिहारे, दिवाकर रूसत है क्योँ बताइये ?”

परकीय प्रेम की एकान्तता और आत्मसमर्पण का भी चित्रण भारतेंदु जी ने मार्मिक किया है :—

“वह सुन्दर रूप बिलोकि सखी, मन हाथ तें मेरे भग्यो सो भग्यो ।

चित माधुरी मूरति देखत ही, हरिचंद जू जाय पग्यो सो पग्यो ।

मोहि औरन सों कछू काम नहीं, अब तौ जो कलंक लग्यो सो लग्यो ।

रंग दूसरो और चढैगो नही, अनी, साँवरो रंग रँग्यो सो रँग्यो ॥”
समाज की उपेक्षा और सब प्रकार के नीत्युपदेश की असफलता की
घोषणा प्रेम की एक निष्ठा को स्पष्ट कर देते हैं ।

इसी प्रकार से उत्तमा का भी एक उदाहरण देविये :—

जानत कौन है प्रेम विथा केहि मो चरचा या वियोग की कीजिये
को कही मानै, कहा समुझै कोउ, क्यों बिनु बात की सरहि लीजिये
जो हरिचंद जू बात सहे बकि कै जग क्यों परनीतहि छीजिये
पूछत है सब मौन है क्यों ? पिय प्यारे कहा इन्है उत्तर दीजिये ।
नायिकाओं के १८ स्वभावसिद्ध हावों में विच्छित्ति हाव का सुन्दर
उदाहरण भारतेंदु जी में मिलता है । साहित्य दर्पण में लिखा है
“कान्ति को बढ़ाने वाली थोड़ी भी वेष रचना ‘विच्छित्ति’ कहाती है ।”
यहाँ पर कवि नायिका के निराकरण सीन्दर्य का बहुत सुन्दर वर्णन
करता है । विच्छित्ति हाव का बहुत ही स्वच्छ उदाहरण है :—

फबी छवि थोरे ही सिगार

बिना कंचुकी बिनु कर ककन सोभा बढी अपार
खसि रही तनतें तनसुख सारी खुलि रहे सोधे बार
हरीचंद मन मोहन प्यारी रिझयो है रिझवार ॥

इसी प्रकार बिखरे हुए नखशिख में मुख, ताम्बूल रेख, सिन्दूर, माँग,
सीसफूल, नथ आदि आभरणों सहित साङ्गोपाङ्ग वर्णन करते हैं ।
भारतेंदु जी ने भी इच्छानुसार ऐसे वर्णन किये हैं :—

“बनी यह सोभा आज भली ।

नथ मै पोही प्रान पियारे निज कर कुसुम कली ।”

अथवा

आजु सिर चूड़ामनि अति सोहै ।

जूड़ो किस बाँध्यो है प्यारी पीतम को मन मोहै । इत्यादि
विद्या सुन्दर में इसी प्रकार मुख वर्णन मिलता है :—
‘कहै को चंद बदन की शोभा ।

जाकों देखत नगर नारि कों सहजहि मन लोभा ।

+

+

+

भौह कमान कटाक्ष बान से अलक भ्रमर घुँघरारे ।

देखत ही बेधत है मन मृग नहि बचि सकत बिचारे ॥ इत्यादि इस प्रकार यत्र तत्र नखशिख वर्णन के उदाहरण प्राप्त होते हैं, किन्तु जैसा कि कहा जा चुका है भारतेंदु जी ने कभी नखशिख का क्रमिक वर्णन करने का प्रयत्न नहीं किया, इसी कारण इसके बहुत उदाहरण भी प्राप्त नहीं होते ।

उपयुक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि भारतेंदु जी का काव्य शास्त्रीय ढंग पर हुआ था । किन्तु प्रत्येक अंग के पीछे पड़ कर उनकी रचना क्रमिक नहीं हुई । फिर भी लगभग सभी अंगों का बिखरा हुआ वर्णन उनके काव्य में वर्तमान है । यह वर्णन बहुत ही स्वाभाविक तथा सुन्दर है । गीति काव्य में सात्विकता का भाव विशेष प्राप्त होता है ।

इसी प्रकार प्राचीन कवियों की भाँति भारतेंदु जी ने षट् ऋतु वर्णन भी किया है । यह वर्णन अधिकतर “मधुमुकुल”, “होली”, “प्रेमाश्रु-वर्षण”, “वर्षा विनोद”, “रास सग्रह” आदि में विशेष रूप से है । वर्षा विनोद में मे बारहमासा तथा वर्षा ऋतु का वर्णन सुन्दर है । और इसी के अन्तर्गत भारतेंदु जी का प्रकृति चित्रण भी आ जाता है ।

सर्व प्रथम हम ऋतुराज बसन्त का वर्णन देखेंगे :—

“फेर अब आई रैन बसन्त की ।

बदलि चली पौनहु सुगंध भरि तजि के सीत हिमन्त की ।

फिर आई दुःखदाइनि पिय विनु घरी वियोगिनी अन्त की ।

हरीचद पाती लै आओ अब हूँ तो कोउ कन्त की ॥”

इस पद में केवल परम्परा का पालन न होकर सहृदयता विशेष है, किन्तु परम्परागत ऊहात्मक वर्णन भी मिलते हैं :—

बन मैं आगि लगी है, फूले देखु पलास ।

कैसे बचि है बाल वियोगिन देखि यसन्त विलास ।” इत्यादि—
होली, फाग, वसन्त का वर्णन ही भारतेंदु जी का सबसे प्रचुर है ।
उनका यह छन्द तो कितने ही रसिकों का कण्ठहार है :—

फूलैगे पलास बन आगि सी लगाइ कूर
कोकिल कुलुकि कल सबद मुनावैगो
त्योही सखी लोक सब गावैगो धमार धीर
हरन अबीर बीर सबही उड़ावैगो
सावधान होहु रे वियोगिन सम्भारि तन
अतन तनक ही मै तापन ते तावैगो
धीरज नसावत बढावत विरह
काम कहर मचावत वसन्त अब आवैगो ।

दूसरे उदाहरण मैं वासन्ती छठा का मुक्त वर्णन अत्यन्त मनोरम है :—

“देखहु लहि रितुराजहि उपवन फूली चारु चमेली
लपटि-रही सहभारन सों बहु मधुर माधवी-बेली
फूले वर वसन्त बन बन मै कहुं मालती नवेली
तापे मदमाते से मधुकर गूँजत मधु-रस-रेली
मदन महोत्सव आलु चलै पिय मदन मोहन सो भेटे
चोआ चंदन अगर अगरजा पिय के अंग लपेटै ।” इत्यादि—

वर्षा वर्णन भारतेंदु जी का अच्छा हुआ है । वर्षा विनोद में इसके अच्छे
चित्र हैं— प्रारम्भ ही कजली से किया गया है जो वर्षा का लोकप्रिय
गीत है :—

प्यारी भूलन पधारो भुकि आए बदरा
ओढ़ी सुरुख चूनरि तापै श्याम चदरा । इत्यादि—

इसी प्रकार लावनी में भी उन्होंने वर्षा का मार्मिक चित्र खींचा है :—

“...बूँद बगै टप टप मारग कोई नहि जाता आता ।

सोए घर घर सब पट तानी ॥

सन सन करके रात खनकती भीगुर भनकारें
कभी कभी दातुर रट कर जिय व्याकुल कर डारें
साँप खडहर पर डन कारें ।
गिरै करारे टूट के नदी छलक मारें ।
पिया बिन सब ही दुखदानी ॥” इत्यादि ।

षट् ऋतु वर्णन के अन्तर्गत के उदाहरण कवि की मुक्त विचार धारा की सूचना देते हैं ।

रागसंग्रह में प्रायः सभी ऋतुओं के वर्णन पाए जाते हैं । अधिक उदाहरण व्यर्थ है । भारतेंदु जी के ऋतु वर्णन में ध्यान देने की बात यह है कि उन्होंने प्राचीन विषय लेकर भी उसे रूढ़िगत नहीं रक्खा, वरन् बहुत कुछ उदार दृष्टि से देखा है, जिससे उसमें काव्य सौन्दर्य का पूर्ण समावेश हो गया है ।

प्रकृति चित्रण :— प्रकृति का चित्र रीतिकालीन हिन्दी साहित्य से बहुत न्यून हो गया था । संस्कृत साहित्य में बाह्य प्रकृति तथा नर प्रकृति का वर्णन समान रूप से हुआ था किन्तु हिन्दी साहित्य में रीतिकालीन कवियों ने नर प्रकृति पर ही अधिक जोर दिया । इसी का प्रभाव भारतेंदु जी पर भी पड़ा था । भारतेंदु जी का प्रकृति चित्रण उद्दीप्त के रूप में किया गया है फिर भी उनका काव्य प्राकृतिक दृश्यों से परिपूर्ण है । किन्तु प्रकृति चित्रणों के लिये निजी अनुभव तथा सूक्ष्म पर्यवेक्षण की आवश्यकता होती है । इसके बिना वह सरस, मर्मस्पर्शी तथा प्रभावपूर्ण नहीं हो सकेगा । भारतेंदु जी प्रकृति प्रेमी थे । शहरी जिन्दगी में भी बाग बगीचों का उन्हें शौक था । कभी कभी वह भ्रमणार्थ भी ईधर उधर जाया करते थे, इस कारण उनके प्रकृति चित्रण में वह नैसर्गिकता नहीं आने पाई है जो होनी चाहिये थी, क्योंकि वाटिकाओं का सौन्दर्य उतना मुक्त, स्वतंत्र नहीं होता जितना बनों का और ऐसे स्थलों पर रहने का अवसर उनको कम मिला था अतएव शुद्ध प्रकृति वर्णन आपके काव्य में नहीं आ पाया,

फिर भी कवित्व शक्ति, भावुकता, सहृदयता आदि के कारण कोई भी वर्णन उनके लचर नहीं थे। गंगा जी की धारा का वर्णन करते हुये वे कहते हैं :—

नव उज्ज्वल जल धार, हार हीरक सी सोहति
विच विच चहरति बूँद मध्य मुक्ता मनि पोहति
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत
जिमि नर गन मन विविध मनोरथ करत मिटावत ।

स्पष्ट ही नर प्रकृति से भारतेन्दु जी प्रभावशाली थे, इसी कारण गंगा की लहरो की तुलना भी उनको मनुष्य के मनोरथ से करनी पड़ी। आगे चलकर ये वर्णन अधिक मानव प्रधान हो जाते हैं :—

कहुं सुन्दरी नहात वारि कर जुगल उछारत
जुग अंबुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु मुच्छ निकारत । आदि ।

× ×

× ×

× ×

सुंदरि सखि मुख नीर मध्य इमि सुंदर सोहत
कमल बेलि लहलही नवल कुसुमन मोहत ॥

कही कही पर अलंकारिक शैली के किए हुए प्रकृति वर्णन यथार्थ में बहुत सुन्दर उतरे हैं :—

तरनि तनूजा- तट तमाल तरुवर बहु छाए
भुके कूल सो जल-परसन-हित मनहु सुहाए

× ×

× ×

× ×

कहू तीर पर कमल अमल सोभित बहु भाँतिन
कहु सैवालिन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पाँतिन
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत व्रज सोभा
कै उमगे पिय प्रिया प्रेम के अनगिन्नी सोभा ॥ आदि ।

इन उदाहरणों से यह बात विदित होती है कि भारतेन्दु जी में पर्याप्त भावुकता थी। सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण करने की क्षमता भी उनमें थी। स्वभाविकता, सहृदयता आदि काव्यगुण उनमें विद्यमान थे,

किन्तु यह सब होते हुये भी प्राचीन सस्कारों के कारण वे प्रायः उसी खडिगत मार्ग को पकड़ कर चलते हैं जिसके कारण सरसता की कमी खटकने लगती है। भारतेंदु जी का प्रकृति चित्रण वाह्य प्रकृति प्रधान पड़ जाता है। उनके वसन्त, होली, ग्रीष्म, अगहन, आदि के वर्णन सब राधाकृष्ण की केलि क्रीड़ा के वर्णन हैं; प्रकृति केवल उस क्रीड़ा को उद्दीप्त करने लिये है।

समस्या पूर्तियाँ :— साहित्यिक परम्परा के अनुसार तथा कवित्व शक्ति प्रदर्शन के हेतु भारतेंदु जी भी समस्या पूर्तियाँ किया करते थे। सस्कृत के छंदों में प्रायः अत्यानुप्रास नहीं रहता। यह तात्पर्य नहीं कि होता ही नहीं वरन् इसका अधिक महत्व नहीं है। किन्तु हिन्दी साहित्य परम्परा में प्रचलित छंदों में अत्यानुप्रास होना आवश्यक सा है। छंद के अन्तिम चरण का आधा भाग तो समस्या के रूप में सम्मुख रहता ही है, उसी भाव से सबंध रखने वाले संपूर्ण छंद की रचना करनी पड़ती है साथ ही अत्यानुप्रास का ध्यान भी रखना पड़ता है। इन कठिनाइयों में भी सबध्या छन्द में समस्या-पूर्ति भारतेंदु जी की बहुत सुन्दर हुई है। प्रवाह, माधुर्य, प्रसाद गुण आदि का समावेश उतना ही रहता है जितना स्वच्छंद छंदों में। समस्या पूर्तियों का वर्णन हम पिछले अध्याय में, भारतेंदु जी के काव्य वर्गीकरण में, कर चुके हैं। यहाँ हमारा ध्येय केवल यह दिखलाना है कि पराम्परागत पूर्तिकारों में भारतेंदु जी का स्थान क्या है? एक कवित्त की समस्या थी, "छवीलो छैल छलके उछाह मे"—भारतेंदु जी की इस प्रवाहपूर्ण पूर्ति के द्वारा उनकी कवित्व शक्ति का दर्शन कीजिये :—

रंग-भौन पीतम उमग भरि बैठ्यो आज

साजे रति-साज पूर्यो मदन उनाह में

हरीचंद रीभत रिभावत हँसावत, हँसत रस

बाढ्यो अति प्रेम के प्रवाह में,

बीरी देन मिस छुए आँगुरी अधर पुनि

चूमै चुपचाप ताहि पान खान चाह में
 लाजहि छुडावत छकावत छकत छवि
 छावत छवीलो छैल छलके उछाह मे ।

समस्या मे जो 'छ' का अनुप्रास था कवि ने उसके साथ अपनी अनुप्रास मयी भाषा को जोड़ कर प्रवाह और सगठन मे पूर्णता उत्पन्न कर दी है । अनुप्रास की छटा तो सारे छन्द मे वर्तमान है । वर्णित भाव भी अस्तव्यस्त नहीं है । एक दृश्य का चित्रण कल्पना की गम्भीरता को प्रकट करता है ।

दूसरी है "धूँधट उघारि मोहि बदन दिखाय दै"

हमतौ तिहारे सब भाँति सो कहावै सदा
 हमसो दुराव कौन सोहै सो सुनाइ दै
 द्वार पै खड़े है बडी देर सो अड़े है यह
 आशा है हमारी ताहि नेक तो पुराइ दै
 हरिचंद जोरि कर विनती बखानै यही
 देखि मेरी ओर नेक मद मुमुकाय दै
 ऐ री प्रान प्यारी बारि बारि बलिहारी नेक
 धूँधट उघारि मोहि बदन दिखाइ दै ॥

अधिकतर पूर्तियाँ सबय्या छंद मे की गई है । कवित्त आदि का भी प्रयोग हुआ है किन्तु जितना माधुर्य्य सबय्या मे आया है उतना कवित्त मे नहीं ।

"अखिया दुखियाँ नहि मानती है" समस्या की पूर्ति सबय्या छंद में देखिये :—

यह संग मैं लागिगै होलै सदा विन देखे न धीरज आनती हैं
 छिनहुं जो वियोग परै हरिचंद तो चाल प्रलै की सु ठानती हैं
 बरुनी मे थिरै न भापै उभपै पट मैं न समाइबो जानती है
 पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अखियाँ दुखियाँ नहि मानती है ।

तुम ऊधौ यहै कहियो उन सो हम और कछू नहि जानती है
 पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अखियाँ दुखियाँ नहि माननी हैं ॥
 अश्रु वर्णन के लिये प्रलय की चाल ठानने की उद्भावना बड़ी चमत्कार
 पूर्ण है। इस प्रकार अनेक विषयो और दृश्यों को लेकर भारतेंदु जी
 बड़ी शीघ्रता के साथ पूर्तियाँ करते थे। उनकी न जाने किननी पूर्तियाँ
 इतनी रसपूर्ण हैं कि सहृदयों को कण्ठाग्र है। इन पूर्तियों में भाषाधिकार
 के साथ-साथ दूर की सूझ, ऊँची कल्पना, सहृदयता आदि सभी गुण
 प्राप्त होते हैं। भारतेंदु जी बहुज्ञ थे। उनका ज्ञान विस्तृत था। प्राचीन
 कवियों के मार्मिक काव्य के वे प्रेमी थे और उसका उन पर पूरा प्रभाव
 था। यही कारण है कि उनकी समस्या पूर्तियों में वे सब गुण एकत्र
 प्राप्त होते हैं। वास्तव में भारतेंदु जी का समस्या पूर्तिकारो में उच्च
 स्थान है। समस्या पूर्ति के लिये वह तुकबन्दी नहीं करते थे वरन्
 सत्काव्य की रचना करने के लिये प्रयत्नशील रहते थे।

भारतेंदु जी विनोद प्रिय तथा हास्यमयी प्रकृति के थे—यह तो हम
 भलीभाँति देख ही चुके हैं। आपकी यह मनोरञ्जकता काव्य साहित्य
 में भी शिष्ट सयत स्वरूप में अवतीर्ण होती थी। कूट पदों का वर्णन
 हम कबीर तथा सूरदास जी की कविता में करते हैं; साथ ही रीति काव्य
 में भी इस प्रकार के चित्र काव्य का समावेश मिलता है। भारतेंदु जी
 इस पराम्परा से अछूते न रह सके, किन्तु इस शैली का प्रयोग उन्होंने
 अपनी हास्यवृत्ति को सतुष्ट करने के लिये ही किया—यह बात हम काव्य
 के वर्गीकरण में देख भी चुके हैं। यहाँ पर हम भारतेंदु जी के मनो-
 रंजनमय काव्य पर एक दृष्टि डालेंगे। उनके अंगरेजी ढंग के चित्र
 काव्य का एक उदाहरण लीजिए :—

भरत के Aकत्र सब Vr सदा बल Pन

Bसहु विस्वा ते रहै तुमरे नितहि अधीन ॥

अंगरेजी अक्षरों के उच्चारण के आधार पर हिन्दी शब्दों की रचना
 बड़ी ही चमत्कारमयी है।

नई मुकरियों में भी खुसरो के समान छेकापन्हूति का आश्रय लिया गया है। यद्यपि इनका आधार वही प्राचीन परिपाटी है फिर भी भावों का समावेश आधुनिक विचारों से हुआ है। अङ्गरेज, ग्रेजुएट आदि पर अच्छी फबतियाँ कसी गई हैं। इस मनोरंजन में भारतेन्दु जी के विचार राष्ट्रीयता की ओर झुके हुये प्रतीत होते हैं। मनोरंजन काव्य उनके आनन्दपूर्ण हृदय का ही परिचय नहीं देता वरन् उनकी उस शैली की ओर भी निर्देश करता है जिसके द्वारा उन्होंने बड़ी सरलता के साथ सुधार आदि कार्यों को सफल बनाया।

(४) भाषा-शैली :—

(छन्द शास्त्र, लोकोक्तियाँ तथा मुहाविरे, गेय काव्य)

रीतिकाल तक हिन्दी काव्य परम्परा में ब्रज तथा अवधी भाषाओं का ही प्राधान्य रहा। आगे चलकर यद्यपि हमारे नित्य व्यवहार में वह भाषा कम आने लगी किन्तु काव्य का शब्दों का सृजन उसी में होता रहा। इस भाषा में एक ओर तो अपभ्रंश काल के शब्दों का प्रयोग पाया जाता था और दूसरी ओर उर्दू फारसी के शब्द भी। भारतेन्दु जी ने प्राचीन शब्दों को काव्य में करना छोड़ दिया। वह व्यर्थ शब्दों का तोड़ मरोड़ आदि पसन्द न करते थे। सरल, सीधी, मर्मस्थल तक भावों को पहुँचाने वाली भाषा का प्रयोग वे अधिक उचित समझते थे। ब्रजभाषा तथा अवधी का भी वह सच्चा तथा सरल स्वरूप ही जनता के सम्मुख रखना चाहते थे।

भाषा से यदि कवि के भाव स्पष्टीकरण नहीं हो सकते तो वह भाषा का शैथिल्य कहा जायगा। अतएव श्रेष्ठ भाषा वही है जो कि सरसता के साथ अभिलषित भाव को व्यक्त कर सके। अस्पष्टता की कठिनाई तभी पड़ती है जब अप्रचलित अथवा कठिन शब्दों के कारण भावों का स्पष्टीकरण तुरन्त ही नहीं हो पाता। अतएव भाषा सरल होनी चाहिये जिससे एक-एक शब्द जैसे ही जैसे उच्चारित होता जाय श्रोता के हृदय तल तक पहुँचता जाय। उपयुक्त शब्दों का प्रयोग,

मुकुमारता, स्वाभाविकता तथा निर्दोषिता के गुणों से भाषा को संयुक्त कर देता है। भारतेन्दु जी में यह गुण था और यहाँ तक था कि आगे चल कर उनके काव्य में उर्दू शब्दों का समावेश भी हो गया है। भाषा का सौंदर्य बढ़ाने के लिए मुहाविरें, लोकोक्तियाँ और अलंकारों का प्रयोग किया जाता है। उनका वर्णन हम पिछले पृष्ठों में कर चुके हैं। भारतेन्दु जी की भाषा का विशेष गुण है स्वच्छन्दता तथा सजीवता। धारावाहिकता के साथ में हमें भारतेन्दु जी में इसके दर्शन होते हैं। यह स्वच्छन्दता इस प्रकार की थी कि इसमें प्रचलित शब्दों का सम्मिश्रण स्वतः होता जाता था। इस प्रकार उनका अधिकार भाषा पर बहुत गहरा विस्तृत होता है। महाकवि बिहारी, मतिराम, घनानन्द का अधिकार जिस प्रकार भाषा पर था उसी भाँति भारतेन्दु जी ने भी भाषाधिकार लाने का प्रयत्न किया है। ब्रजभाषा का एक उदाहरण पर्याप्त होगा:—

हूलति हिये मैं प्यान प्यारे के विरह-सूल
 फूलति उमग भरी भूलति हिडोरे पै
 गावनि रिझावति हँसावति सबन हरि,
 चंद्र चाव चौगुनो बढाइ घन घोरे पै
 बारि बारि डारौ प्रान हंसनि मुरनि, बतरान
 मुह पान, कजरारे दृग डोरे पै
 ऊनरी घटा मैं देखि दूनरी लगी है आहा
 कैसी आजु चूनरी फबी है मुख गोरे पै।

उक्त छन्द में सरलता, सगठन, अलंकारिता आदि प्रमुख गुण हैं, जो कि उनकी भाषा को लोकप्रिय बनाने के लिये पर्याप्त है।

वास्तव में उनकी भाषा प्रमुख रूप से ब्रज भाषा ही है। कहीं-कहीं पर अबधी के शब्दों का मिश्रण भी मिलता है। जैसे—“बेनी हमरे बाट परी”, क्यों कान्हू गोहरावति ही” इत्यादि। उसके अतिरिक्त उर्दू के प्रभाव के कारण खड़ी बोली की ओर भी भारतेन्दु जी का झुकाव हो

हो चला था । यद्यपि उसमे न तो शुद्धता थी और न स्थायित्व;
उदाहरणार्थः—

“कहो रागिनी आज भारी जमावै,

मिले एक लै मे सुगावै बजावै ।

कहाँ भाँड कत्थक छिपे है बुलाओ,

मुबाबरक कहाओ बघाई गवाओ ॥” इत्यादि

इनके अतिरिक्त मारवाडी, पजाबी आदि पर भी भारतेन्दु जी का अधिकार बहुत पूर्ण दिखाई देता है । बँगला की कविता भी उन्होंने की थी ।

“शैली”

भाव पक्ष तथा कला पक्ष काव्य के दो अङ्ग माने गये हैं । कला के अन्तर्गत अलंकार शैली तथा छन्द की सहायता से काव्य का सौष्ठव बढ़ाया जाता है । कवि अपने भावों तथा विचारों को भाषा में अपने ही ढंग से व्यक्त करता है और इस विशेष ढंग के प्रभाव से श्रोता का हृदय प्रभावित होता है । अतः शैली का कथन के ढंग का काव्य में विशेष स्थान है । किसी से मिलती जुलती चाल ढाल वाले मनुष्य को देख कर प्रायः भ्रम हो जाया करता है । इसी प्रकार किसी बड़े लेखक का गद्य अथवा पद्य खण्ड पढ़ कर पाठक तुरन्त ही कह देता है कि अमुक खण्ड अमुक कवि अथवा लेखक द्वारा रचा गया प्रतीत होता है । यहाँ पर विचारों अथवा भावों की ओर दृष्टि नहीं रहती वरन् कथन शैली ही हमारे सम्मुख आती है । अतएव अपने भावों अथवा विचारों को प्रकाशित करने की क्रिया अथवा ढंग ही शैली कहलाता है । कवि अथवा लेखक के व्यक्तित्व को प्रकट करने में इसका बड़ा हाथ रहता है । भावों का स्पष्टीकरण तब तक नहीं हो सकता जब तक कि कवि अथवा लेखक में बुद्धि का प्रसाद, सरलता, प्रभावशीलता तथा स्पष्ट वादिता आदि गुण न हों । जब कवि अथवा लेखक में यह गुण वर्तमान हैं तो काव्य का सुन्दर होना कोई असम्भव बात नहीं होगी । वास्तव में कवि का व्यक्तित्व ही शैली में उतर आता है ।

भारतेन्दु जी की शैली में उपरोक्त सभी गुण वर्तमान हैं । भाषा की क्लिष्टता की ओर से भारतेन्दु जी की बुद्धि का पता तो तभी चल जाता है जब उनकी प्रतिमा को काव्य के प्रत्येक क्षेत्र में विराजमान पाने है । आगे चलकर उदाहरणों में प्रभावशीलता, स्पष्टतादिता, सरलता आदि के गुणों पर दृष्टि डालेंगे ।

शैली के उपरोक्त गुणों के अतिरिक्त एक महत्वशील गुण रागात्मिकता है । इस रागात्मिकता की सहायता से काव्य का प्रभाव हृदय के ऊपर तत्क्षण पड़ता है । भारतेन्दु जी के विरह, सयोग, भक्ति, शृङ्गार के छन्द बहुत ही प्रभावशाली स्पष्ट तथा रागात्मक हैं । भावों के अनुकूल ही उनकी शैली है । वीर रस के लिये काव्य की शैली दूसरी है और शृङ्गार अथवा करुण के लिये दूसरी । उदाहरण के लिये वीर रस के काव्य में शब्दों का चुनाव स्वर्ग आदि से किया जाता है । साथ ही वर्णन लम्बे लम्बे वाक्यों में होते हैं । किन्तु करुण अथवा शृङ्गार में वही वर्णन मधुर तथा छोटे छोटे वाक्यों में होते हैं । कहना न होगा कि भारतेन्दु जी के काव्य का अबलोकन करने से यह गुण स्पष्ट हो जाते हैं ।

भक्ति काव्य में भगवान् की स्तुति करते समय भारतेन्दु जी विशेषणों के प्रयोग तथा समास पद्धति का प्रयोग करते हैं । भगवान् की स्तुति में उनकी व्यापकता के भाव को व्यक्त करने के लिये ही विशेषणों का प्रयोग किया जाता है और समस्त पदों का प्रयोग गम्भीरता लाने के लिये करते हैं । इस सिद्धान्त का पालन करते हुये भारतेन्दु जी तुलसी की विनय पत्रिका का अनुकरण करते प्रतीत होते हैं । कोमल कान्त पदावली का प्रयोग भी कोमल भावनाओं के साथ होता है । भिन्न-भिन्न छन्द में मधुर शब्दावली इस सिद्धान्त का उदाहरण है । इस प्रकार रसों के साथ भिन्न-भिन्न शब्दों का उपयोग भारतेन्दु जी के द्वारा किया गया है ।

तुलसी-विनय पत्रिका-शैली की कुछ पंक्तियाँ देखिये:—

“चण्ड को दण्ड बल खण्ड कृत दनुज बल,

अनुज सह सहज मुभ रूप धारी ।

रक्ष कुल अनल बल प्रबल पर्जायसम,

पन्थ निज जन पक्ष रक्ष कारी ॥ इत्यादि ।

यह स्त्रोत्र शैली बिल्कुल संस्कृतमयी है—गम्भीरता उत्पन्न करने के निमित्त ही इस प्रकार के वर्णन किए गए हैं ।

सूरदास की पद शैली के दर्शन तो भारतेन्दु जी में पद-पद पर होते हैं—उनमें कहीं-कहीं पर अत्यन्त गहरी अनुभूति और पीड़ा का अनुभव हमको मिलता है । प्रबन्ध-रचना के लिये रोना अथवा दोहा का प्रयोग कवि ने किया है जो धाराप्रवाह कथा के लिये उपयुक्त रहता है । भाव वर्णन के लिये लावनी की शैली काफी सफल रही है । गीत काव्य का लक्ष्य वही है जो सूर आदि कवियों का रहा है । कृष्ण लीला, ऋतु वर्णन आदि के मार्मिक स्थलों को लेकर उनमें गीतों में व्यक्त किया गया है । कवित्त, सवय्या, मुक्तक विचारों के लिये उपयुक्त है । भाषा तथा शैली का प्रयोग समय तथा पात्रों के अनुसार ही किया है । मुसलमान उर्दू तथा हिन्दू ब्रजभाषा अथवा खड़ी बोली का प्रयोग करते हैं । अतएव वास्तविकता को हम भारतेन्दु जी की शैली का मुख्य गुण मानते हैं । सुन्दर शैली की जितनी भी विशेषताये होती हैं भारतेन्दु जी में सभी वर्तमान हैं । सरसता, सरलता, मार्मिकता अथवा रागात्मकता गुणों से शैली पूरित है । उनकी शैली में उनका निज का व्यक्तित्व, स्वाभाविकता, अकृत्रिमता आदि गुण वर्तमान हैं ।

छन्दः—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के विषय में हम बराबर देखते चले आ रहे हैं कि वह भक्ति और रीतिकालीन परम्परा पर चल रहे थे । साथ ही गलत रास्ते को छोड़कर अपनी नवीन परिपाटी का प्रचलन और प्राचीन परिपाटी के दोषों का निराकरण भी करते थे । परन्तु भक्ति-रीतिकाल के कवियों के काव्य में विभिन्न छन्दों का बाहुल्य था और वही बात भारतेन्दु जी के काव्य में भी पाई जाती है । भक्ति

और रीतिकाव्य घनाक्षरी, सवय्या, दोहा, सोरठा, रोला, मत्तगयद, चौपाई, छप्पय, कुण्डलिया, लावनी, पद आदि में लिखा गया और उसी का अनुकरण भारतेन्दु जी ने भी किया है। जिस प्रकार से भूषण का वीर रस का काव्य कवित्त अथवा घनाक्षरी में सुन्दर उतरा है उसी प्रकार भारतेन्दु जी ने भी वीर, रौद्र, वीभत्स, अद्भुत आदि रस कवित्त अथवा घनाक्षरी में सुन्दरता एवम् सफलतापूर्वक प्रदर्शित किए हैं। वीर रौद्र आदि काव्य के उपयुक्त घनाक्षरी उत्तम छन्द माना गया है। सवय्या में शृङ्गार, करुण, शान्त रसों का वर्णन अधिक सुन्दर होता है। दोहे, कुण्डलियाँ, छप्पय आदि में नीति शृङ्गार का निरूपण कवियों ने प्रायः किया है। दोहा, चौपाई, रोला, सोरठा, मत्तगयद छंद अधिक तर प्रबन्ध रचना के लिये उपयुक्त होते हैं। भारतेन्दु जी की शैली में भी इन्हीं छन्दों का आधार है और रस निरूपण इन्हीं छन्दों की दृष्टि से किया गया है। अब तक रसात्मकता की दृष्टि से भारतेन्दु जी के छन्दों के उदाहरण न जाने किनने आ चुके हैं उसी से हम विचार कर सकते हैं कि उनकी छन्द परम्परा वही प्राचीन ही है।

(१) वीरगाथा काल की छप्पय पद्धति, (२) विद्यापति तथा सूरदास की गीत पद्धति, (३) गङ्ग आदि भाटों की कवित्त-सवय्या पद्धति, (४) कबीर, रहीम आदि की नीति सम्बन्धी दोहा तथा पद पद्धति तथा (५) ईश्वरदास, तुलसी, जायसी आदि की दोहा चौपाई पद्धति के अनुसार ही भारतेन्दु जी ने भी छन्दों का प्रयोग किया है। तथा भारतेन्दु जी का काव्य लगभग इन सभी पद्धतियों से प्रभावित है। वीरगाथा काल की छप्पय पद्धति का अनुसरण भारतेन्दु जी ने किया था किन्तु अधिक नहीं। उसमें वीर रस के समावेश के स्थान पर भक्ति का समावेश अधिक पाया जाता है। उदाहरण के लिये एक पद देखिये:-

जय जय गिरवर-धरन जयति श्री नवनीत प्रिय
जयति द्वारका धीस जयति मथुरेश माल हिय
जय जय गोकुल नाथ मदन मोहन पिय प्यारे

जय गोकुल चन्द्रमा सु विट्ठल नाथ दुलारे

श्री बालकृष्ण नटवर नवल श्री मुकुद दुख द्वंद हर ।

स्वामिनि सह ललित तृभंग गोपाल लाल जय जयति वर ।

उत्तरार्ध भक्तमाल में इसी छप्पय का प्रयोग नाभादास के आधार पर किया गया जान पड़ता है । दूसरी पद्धति विद्यापति तथा सूरदास जी की गीत पद्धति है इसका अनुसरण भी भारतेन्दु जी ने किया है । पद शैली के दर्शन हम लगभग इनके सभी काव्य ग्रन्थों में पाते हैं । सूरदास तथा विद्यापति की भाँति उनका गीत-काव्य बहुत ही मनोहर तथा माधुर्यपूर्ण है । कही कही पर तो यह पहचानना ही कठिन हो जाता है कि पद के रचयिता सूरदास जी हैं अथवा हरिश्चन्द्र जी । एक उदाहरण इसका भी देखिए—

तुम सम कौन गरीब नेवाज

तुम साँचे साहेब करुना निधि पूरन जन मन काज

सहि न सकत लखि दुखी दीन जन उठि धावत ब्रजराज

विह्वल होइ सँवारत निज कर निज भक्तन के काज

स्वामी ठाकुर देव साँच तुम वृंदाबन-महराज

‘हरी चद’ तजि तुमहि और जे जाँचत ते बिन-लाज ।

क्या सूरदास जी तथा भारतेन्दु जी की भाषा में, भावों में कोई विशेष अंतर जान पड़ता है ? हम उनके उदाहरण अधिक नहीं दे सकते नहीं तो यह स्पष्ट किया जा सकता है कि सूरदास जी तथा भारतेन्दु जी भाषा, भावों आदि में बहुत कुछ साथ हैं । एक ही पद से यह बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है ।

भारतेन्दु जी की तीसरी शैली गङ्गा आदि भाटों की कवित्त, सवय्या शैली के समान है । इस पद्धति को भारतेन्दु जी ने तुलसी तथा अन्य रीति कालीन कवियों की भाँति अपनाया है । इसमें अधिकतर सभी रसों का समावेश वर्तमान है । प्रेम माधुरी, प्रेम तरंग तथा अन्य ग्रन्थों में इसी प्रकार का काव्य पाया जाता है । इसकी भाषा एक ओर कोमल तथा

दूसरी ओर कठोर है । उदाहरण के लिये एक वीर तथा एक शृङ्गार रस का छंद दिया जाता है:—

भाजे से फिरत शत्रु इत उत दौरि दौरि ।

दबत जमानी जाको जोहत जलूस है ।

ब्रम्ह अस्त्र ऐसी तोपै तोपै एकै बार फौज ।

बिलम बढ़क गोली दारू कारतूस है ।

ऐसो कौन जग मे बिलोकि सकै जौन इन्है ।

देखि बल बैरी-दल रहत मसूस है ।

प्रबल प्रताप भारतेश्वरी तिहारै क्रोध ।

ज्वाल काल आगे रोम मोम रूस फूस है ।

अब सवय्या का शृङ्गार सौन्दर्य देखिए:—

तजि के सब काम को तेरे गलीन मे रोजहि रोज तो फेरौ करौ।

तुम बाट विलोकत ही 'हरिचंद' जू बैठि के सौंभ सबेरो करै ।

पै सही नहि जाति भई बहुतै सो कहाँ कहँ लो जिय छोरो करे ।

पिय प्यारे निहारे लिये कबलों अब दूतिन को मुख हेरो करे ।

कबीर आदि की ही भाँति भारतेंदु जी की नीति पद्धति भी दोहा, चौपाई कुंडलियो आदि में पाई जाती है । इसमें मार्मिकता तथा रचना कौशल से परिपूर्ण बातें कही गई हैं । भक्ति प्रेम तथा नीति संबन्धी काव्य भी लिखा गया है । नीति, सूक्ति पद्धति तथा लीला सम्बन्धी काव्य इसके अन्तर्गत भी आ जाता है ।

भक्ति का एक दोहा देखिये:—

नमो नमो श्री हरि चरण शिव-मन-मंदिर रूप ।

बास सम्परे उर करौ पर्यो भव कूप ।

नीति:— बिनु हरि-पद-राधा-भजन नाहि न और उपाय

क्यों मनतू भटकत वृथा जगत जाल फसि धाय

मथिकै वेद पुरान बहु यहै लह्यो इक सार

राधा माधव-चरन भजू तजु जय जोग हजार ।

दोहा चौपाई पद्धति में प्राचीन कवियों ने प्रबन्ध काव्यों की रचना की थी। जायसी का पद्मावत, तुलसीदास जी की रामायण की रचना इस पद्धति में हुई, किन्तु भारतेन्दु जी ने इस प्रकार काव्य नहीं लिखा। केवल दोहे में इनके वर्णनात्मक काव्य हैं। हिन्दी लेखक, भारत शिक्षा विजयिनी वैजयन्ती में दोहे का प्रयोग प्रबुर मात्रा में हुआ है-यद्यपि रोला में रचना नहीं है किन्तु नन्द दास से भारतेन्दु जी ज्यादा प्रभावित दिखलाई पड़ते हैं। हास्य व्यंग्य का मिश्रण भी दिखलाई पड़ता है:-

कहाँ सबै राजा कुँवर और अमीर नवाब

आज राज दरबार में हाजिर होहु

सिरन भुकाय सलाम करि मुजरा करहु जुहारि

जटितहु जूतन त्यागि के स्वच्छ बूट पगधारि।

द्वार द्वार पर बंदन माला, रंग रँग बसन फूल दल जाला।

कदली खम्भ पात थरहरई, पद भय हिलि हिलि मनु मन हरहीं।

शैली रानी छद्म लीला, बकरी विलाप आदि में वर्णित है। देवी छन्द लीला में यद्यपि पदों में वर्णन किए गए हैं किन्तु वर्णन की शृंखला नहीं टूटती। विजय बल्लरी विजयिनी विजय वैजयन्ती में भी इसी प्रकार की शैली का प्रयोग है।

मोटे तौर पर भारतेन्दु जी की शैली उपर्युक्त श्रेणियों में विभाजित की जा सकती है। इनके अतिरिक्त गीत तथा उर्दू आदि की कविता की शैली विभिन्न है। सरल पदों में उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग पाया जाता है। प्रचलित भाषा के अन्तर्गत उर्दू तथा अन्य शब्दों की भरमार हुई है। पदों में उर्दू शब्दों का भी बाहुल्य प्रदर्शित होता है किन्तु केवल सरलता की प्रेरणा वश ऐसा किया गया है।

लोकोक्तियाँ तथा मुहाविरो का प्रयोग काव्य को सुन्दर बना देता है। भारतेन्दु जी के काव्य में भी लोकोक्तियों तथा मुहाविरों का प्रयोग काफी हुआ है। मुहाविरों के प्रयोग से काव्य में विशेष चमत्कार उत्पन्न किया जाता है। और इसी प्रयोग के कारण भारतेन्दु जी शैली

सरलता, तथा सजीवता से पूर्ण हो गई है। परन्तु यहाँ पर यह कह देना उचित होगा कि उर्दू के प्रचलित शब्दों वाले मुहाविरों को छोड़कर अधिकतर हिन्दी के ही मुहाविरों का प्रयोग मिलता है। मुहाविरों के कारण प्रभावोत्पादकता तथा चमत्कार का समावेश उनके काव्य में उपलब्ध है। थोड़े शब्दों में मुहाविरों की सहायता से भाव व्यक्त हो जाते हैं। यही गुण है जिससे काव्य में चमत्कार उत्पन्न हो जाता है। दो एक उदाहरण नीजिए:-

पहिले बहु भाति भरोसो दियो अब ही हम लाइ मिलावती है
हरिचंद भरोसे रही उनके सखिया जो हमारी कहावती हैं
अब वेई जुदा ह्वै रही हम सो उलटी मिली के समुझावती है
पहिले तो लगाइ के आग अरी जल को अब आपुहि धावती है।

उपर्युक्त पद्य में भरोसे रहना, सखी कहलाना, भरोसा देना, आग लगाकर पानी को दौडना आदि मुहाविरों के आ जाने से कविता का सौन्दर्य तथा प्रवाह अनेक गुना बढ़ गया है। भारतेन्दु जी का विशेष गुण तो मुहाविरों के प्रयोग में प्रकट होता ही है, साथ ही “सखियां जो हमारी कहावती हैं” में जो व्यंग्य है वह भी विशेष दर्शनीय है। पहले तो आग लगाई और बाद में स्वयं उसको बुझाने का स्वाँग रच रही है। इस प्रकार के मुहाविरों का प्रयोग आपके काव्य में प्रचुरता से हुआ है। यहाँ पर दो चार का उल्लेख कर देना अनुपयुक्त न होगा:-

१-हाय सखी इन हाथन सों अपने पग आप कुठार में दीनों
२-अपुनावते सोचि विचारि नबै जलपान कै पूछनी बात नहीं
३-सब को जहाँ भोग मिल्यो तहाँ हाय वियोग हमारे ही बाटे पर्यो
४-साँची भई कहनावति वा अरी ऊँची दुकान की फीकी मिछाई।

एक अन्तिम छन्द में भारतेन्दु जी के मुहाविरों तथा लोकोक्तिओं की बहार देखिये:-

काले परे कोस चलि चलि थक गए पाय

सुख के कसाले परे ताले परे नस के

रोय रोय नैनन मे हाले परे जाले परे
 मदन के पाले परे प्रान परे बस के
 हरीचंद अगहू हवाले परे रोगन के
 सोगन के भाले परे तन बन खस्के
 पगन मे छाले परे नाँविबे को नाले परे
 नऊ लाल लाले परे रावरे दरम के ।

यद्यपि अनुप्रास की भोक में भारतेन्दु जी आ गए हैं किन्तु मुहाविरों के ही कारण छन्द का सौंदर्य बढ गया है । पैरों में छाले पड़ना, दर्शन के लाले पड़ना, नाले नाँघना, बल का खिसकना आदि एक ही साथ इनने मुहाविरों का प्रयोग बड़ी सुन्दरता के साथ किया गया है । भारतेन्दु जी १ इस प्रतिभा में कोई सदेह नहीं कर सकता । भाषा पर अधिकार रसात्मकता अलंकार छंद आदि सभी अंगों का उनका ज्ञान गहरा था समयानुकूल शब्द का स्थान काव्य में उनका समझा हुआ था एक-एक शब्द का चुनाव नया उसका प्रयोग समझ कर करते थे ।

संगीतज्ञ भारतेन्दु जी अपने काव्य को सदा गेय बनाने का ही प्रयत्न करते रहे । पदों को इसी कारण सरल शब्दों तथा सरल भावों से भूषित किया, इसका कारण यह भी था कि श्रोता को न तो भाव ग्रहण करने में कोई बाधा हो और न गाने वाले को किसी प्रकार का उजझाव हो, हँसी-हँसी में पद, लाबनी तथा समस्या पूर्तियाँ बनती थी । गान विद्या में आप स्वयं चतुर थे तथा इसी कारण राग रागिनियों में गेय पद रचा करते थे । आपके राग संग्रह तथा अन्य सभी ग्रन्थों में ही पद पड़े हैं । कजली आपकी बहुत प्रिय थी, साथ ही सभी रागों में आपके गीत बँधे थे । यह संगीत प्रियता हिन्दी भाषा ही में नहीं है वर्न्न संस्कृत में अष्टपदी तथा कजली के रूप में दिखलाई पड़ती है । फारसी उर्दू, बँगला, गुजराती, पंजाबी भाषा में भी संगीतभय पद दूसरा प्रदर्शन करते हैं । अनुवादों में भी संगीत का वही आनन्द मिलता है जो मौलिक रचना में । इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेन्दु जी का विभिन्न शैलियों

पर गमान अधिकार था । वे किसी दायरे में बँधे रहना पसंद नहीं करते थे, प्रोत्तु इतललए उदारता पूर्वक सम्पूर्ण शैली साधनों की सहायता से काव्य रचना करते थे ।

(ब) नवीन शैली —

- (१) राष्ट्रीय भावना तथा हिन्दी प्रचार
- (२) उर्दू काव्य तथा अन्य भाषाओं का काव्य
- (३) मनोरंजन
- (४) अंगुवार

(१) राष्ट्रीय भावना तथा हिन्दी प्रचार :—

हम देना चुके हैं कि भारतेंदु जी भक्ति तथा रीतिकाल से किस प्रकार प्रभावित थे और उनका काव्य उसी परम्परा के आधार पर रचा गया । किन्तु देश, काल, समाज की परिस्थितियों में परिवर्तन होने के कारण भारतेंदु जी ने परम्परा से चले आने हुये विषयो तथा काव्य प्रणाली में भी परिवर्तन उत्पन्न किये । उन सकीर्ण विषयो को नवीन तथा विस्तृत क्षेत्रों में भूषित किया । राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के प्रभाव से विभिन्न क्षेत्रों की रूढ़िगत परम्पराओं का परिष्कार भारतेंदु जी ने प्रारम्भ किया । देश प्रेम, राजभक्ति, लोक हितकर कार्य, समाज सेवा आदि को उन्होंने अपना लक्ष्य बनाया । साहित्यिक क्षेत्र में हिन्दी साहित्य की स्थिति दूसरी ही थी; हिन्दी भाषा तथा साहित्य का महत्व कुछ भी नहीं माना जाता था, अतएव हिन्दी प्रचार तथा हिन्दी सेवा की ओर उनका ध्यान आकर्षित हुआ । भारतेंदु जी तन, मन, धन से हिन्दी साहित्य की सेवा तथा प्रचार के कार्य में लग गये । राष्ट्रीयता के क्षेत्र में भारतेंदु जी का काव्य एक ओर तो भारत के प्राचीन गौरव का स्मरण दिलाता है और दूसरी ओर वर्तमान स्थिति का सच्चा दिग्दर्शन करता है । पश्चिमीय शिक्षा तथा शासन से भारतवासियों की दुर्दशा का वर्णन इस क्षेत्र में वर्णित है । अपनी सरल तथा शुद्ध हिन्दी को जनता के सम्मुख आदर्श रूप में रख कर उन्होंने उसका प्रचार किया । परन्तु प्रचलित अन्य भाषाओं के

शब्दों का समावेश हिन्दी में वह अनुचित नहीं समझते थे । इस प्रकार एक ओर तो प्राचीन भारत का चित्रण उसकी अनेक दशाओं कुदशाओं आदि से परिपूरित है और दूसरी ओर भारत की नवीन परिस्थितियों पर विचार किया गया है । देश प्रेम भारतेन्दु जी की नस-नस में बसा हुआ था और परिणाम स्वरूप नवीन शैली में सब कही इसी भावना तथा विचार धारा का प्रसार पाया जाता है । भारत की प्राचीन वीरता का एक चित्रण देखिये:—

इनही के क्रोध किये प्रकास
सब काँपत भूमण्डल अकास ।

इनही के हूँकृति शब्द घोर
गिरि काँपत है मुनि चार ओर ।

जब लेत रहे कर में कृपान
इनहीं कँह हौ जग तृन समान ।

मुनि कै रन जन खेत माँहि
इनही कँह हो जिय सँक नाहि ।

यथार्थ में प्राचीन भारत का इतिहास पढ़ कर किसे अपने देश पर गर्व नहीं होगा और ऐसे देश की आज यह दशा !! पृथ्वी के कण-कण में भारत की छाप है । उसी से निर्मित संसार आज भारत की दुर्दशा देख कर रो रहा है । भारतेन्दु जी का क्षोभ बढ़ता ही जा रहा है और उनकी आँखों के सम्मुख भिन्न-भिन्न स्थानों तथा उनकी महत्ता की स्मृति उनको पीड़ित कर रही है:—

“काशी प्राग अयोध्या नगरी दीन रूप सम ठाढ़ी सगरी ।”

किन्तु उनको देख कर चंडाल भी घृणा कर रहे हैं । वही

हाय पंच नद ! हा ! पानी पत
अजहुं रहे तुम धरनि विराजत

हाय चित्तौर निलज तू भारी
अजहुं खरो भारतहि मँझारी

इसी प्रकार से गङ्गा तथा यमुना भी बह रही हैं किन्तु दीनान्धता में

भारतेन्दु जी उन सबका या तो उत्थान चाहते हैं और या पूर्ण रूप से नाश क्योंकि यह करुण दृश्य उन्हें सह्य नहीं। तभी वह सागर से प्रार्थना करते हैं:—

धोवहु यह कलक की रासी

बोरहु किन भट मथुरा कासी ॥

कुस कन्नौज अग अरु बंगहि

बोरहु किन निज कठिन तरगहि ॥

अहो भयानक भ्राता सागर

तुम तरग निधि अति बल-आगर ॥

उनको दुख इस बात का है कि अन्य देशों ने अपनी खोई हुई कीर्ति को देखते ही देखते पा लिया है:—

रोम ग्रीस पुनि निज बल पायो सब विधि भारत दुखी बनायो ।

और इस विकलता को वह संभाल नहीं पाते। निस्सहाय हो उन्हें भगवान् ही स्मरण हो आते हैं। वह प्रार्थना करते हैं कि हे ईश्वर इस दीन-हीन भारत की सहायता करके वही शक्ति, वही मान, वही धन धान्य फिर से प्रदान करो, क्योंकि आपके अतिरिक्त भारतवासियों का दूसरा सहारा नहीं है। इस विपत्ति के समय परमात्मा की विमुखता से उन्हें और भी अधिक दुख का अनुभव होता है:—

कहाँ गये अब शास्त्र कही जिन भारी महिमा गाई

भक्त वल्लभ करुना निधि तुम कहँ गायो बहुत बनाई

हाय सुनत नहिं निठुर भए क्यो परम दयाल कहाई

सब बिधि बूढ़त लखि निज देसहिं लेहु न अबहुं बचाई

इन प्रार्थनाओं को विफल होते देखकर उनका मन निराशा से भर जाता है। उन्हें अनुभव होता है कि अब भारत का पुनरुत्थान न होगा। वे कह उठते हैं:

सब भाँति दैव प्रतिकूल होइ एहि नासा

अब तजहु वीरवर भारत की सब आसा

इत कलह विरोध सबन के हिय घर करिहैं
 मूरखता को तम चारहु और पसरि है
 वीरता एकता ममता दूर सिधरिहै
 तजि उधम सबहि दास वृत्ति अनुसरिहै
 नसि जैहै सगरे सत्यधर्म अविनासी
 निज हरि सो ह्वै है विमुख भरत भुववासी

किन्तु इस निराशावाद का उद्देश्य भी भारतेंदु जी ने सुधार और उत्थान ही रक्खा है। पतित अवस्था का भय दिखलाकर उत्थान का प्रयत्न इन पंक्तियों में छिपा हुआ दृष्टिगत होता है।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतेंदु काव्य की नवीन धारा के अन्तर्गत देश भक्ति का ही प्राधान्य रहा है। इसमें देश-दशा का करुणापूर्ण तथा मार्मिक चित्रण हुआ है। स्वतन्त्र तथा मुक्तक रचनाओं में देश के अतीत गौरव तथा वर्तमान दुर्दशा पर वेदना और क्षोभ का करुणापूर्ण चित्रण करते हुये भविष्य सुधार की ओर संकेत किया गया है। विजयिनी विजय वैजयन्ती आदि में प्रोत्साहन आदि का बहुत ही सुन्दर समावेश पाया जाता है।

हम पहले ही कह आये हैं कि भारतेंदु जी की राजभक्ति स्वार्थवश नहीं थी। वह राजभक्ति की सहायता से भारतवासियों का कल्याण करना चाहते थे। राजा को दैवी शक्ति सम्पन्न मान कर और राज-नीतिज्ञता के कारण भी राजभक्ति के पोषक थे। हिन्दी का उपकार, उसको राष्ट्र भाषा बनाने का प्रयत्न, कचहरी में उसका प्रवेश ही उनका ध्येय था और इन सब प्रकार के सुधारों को बिना राजभक्ति प्रदर्शित किये कार्य रूप में परिणत करना उस समय कठिन था।

देशवासियों की निरुद्यमता, निरुत्साहिता देखकर उन्होने उनके सुधार के निमित्त काव्य में व्यंग्य का प्रयोग किया। अपने गद्य-पद्य ग्रन्थों में शिक्षा, बाल विवाह, विधवा विवाह, भ्रूण हत्या, स्त्री शिक्षा, विवाह आदि उत्सवों में अपव्यय, विवाह के अवसर पर अश्लील गीतो

का प्रयोग आदि विषयो पर उन्होंने जनता को बहुत कुछ सन्मार्ग दिखलाने का प्रयत्न किया है। उक्त कुरीतियों के प्रति उनका विरोध बड़ा तीव्र और प्रभावशाली है। मद्यपान, फूट, डाह, स्वार्थ आदि का भी विरोध आपने स्थान-स्थान पर किया है। स्त्रियो तथा साधारण जनता के लिये ही उन्होंने कजली, ठुमरी, खेमटा, कहरवा, चैती, होली, लावनी, आदि की रचना की थी। वे चाहते थे कि कुरुचिपूर्ण गीत और गालिया आदि के गाने की प्रथा बंद हो जाय। राजभक्त भारतेन्दु यह भली भाँति जानते हैं कि विदेशी शासकों का वास्तविक उद्देश्य भारत भ्रष्ट है, उनका परिणाम हमें क्या मिल रहा है। वे भले ही स्वीकार कर ले कि—

“अंग्रेज राज सुखसाज सजे सब भारी”

परन्तु जो बात उनको खटकती है, वह है:—

“पै धन विदेस चलि जात यहै अति ख्वारी।”

इस विदेशी व्यापार से भारतियों को क्या ? क्योंकि:—

“बड़ै बृटिश वाणिज्य पै हमको केवल सोक।

जज्ज कलक्टर होइहे हिन्दू नहि तित धाइ

ये तो केवल मरन हित द्रव्य देन हित हीन।”

नवीन युग में भारतेन्दु को हम वीर रस काव्य का प्रवर्तक भी कह सकते हैं। उन्होंने देशवासियों को कर्मण्यता ग्रहण करने का प्रोत्साहन बार बार दिया है। प्राचीन गौरव की स्मृति से पुनः उठ खड़े होने और शत्रुओं को परास्त कर देने के लिये ललकारा है। बीरता का संदेश इस प्रकार से देते हैं:—

परिकर कटि कस उठौ धनुष पै धरि सर साधौ

केसरिया बाना सजि कर रन—कंकन बाँधौ ॥

+ + + +

निरभय पग आगेहि परत मुखतें भाखत मार

चले वीर सब लरन हित पच्छिम दिसि इक बार ॥

+ + + +
छुटी तोप फहरी धुजा गरजे गहकि निसान
भुव मंडल खलभल भयो भारत सैन पयान ॥

इस वीरता मे केवल युद्ध वीरता ही नहीं है । ज्ञान वीरता, बुद्धि वीरता आदि का भी पुनः ग्रहण वे आवश्यक बतलाते है । भारत का प्राचीन गौरव उन्हें एक क्षण भी नहीं भूलता है जिसकी स्मृति बल पर वे पुन-जागृति उत्पन्न करना चाहते है :—

कित अरजुन कित भीम कित करन नकुल सहदेव
कित विराट अभिमन्यु कित द्रुपद सत्य नरदेव
कित पुरु, रघु, अज यदु कितै परशुराम अभिराम
कित रावन सुग्रीव कित हनूमान गुनधाम ॥ आदि ।

ऐसे गौरवशाली भारत का ससार की छोटी छोटी हस्तियों में भी कोई स्थान नहीं, यह कितनी लज्जा की बात है :—

अति निरबली स्याम जापाना
हाय न भारत तिनहुँ समाना
हाय रोम तो अति बड़ भागी
बर बर तोहि नास्यो जय लागी ।

समाज सुधार का वर्णन तो भारतेन्दु जी के काव्य में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है, किन्तु दैवी शक्तियों से भी भारत की रक्षा के हेतु निरन्तर प्रार्थना करते रहना आस्तिक हिन्दू कैसे भूल सकता है :—

सब दुख दारिद दूर बहाओ, विद्या और कला फैलाओ
हमरे घर मेंह शान्ति बसाओ देहु असीस हमै सुखकारी ।

परन्तु जहाँ तक मानव शक्ति का सम्बन्ध है, भारतेन्दु जी का विश्वास है कि इन सब कष्टों से मुक्ति तभी मिल सकेगी जब भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी होगी हम अपनी मातृभाषा का आदर करेंगे उसे अपनाएँगे । हम चाहे कितने ही पारंगत हो जाएँ किन्तु बिना हिन्दी ज्ञान के न तो देश का ही उद्धार हो सकता है और न हम राष्ट्रीयता के भाव का अनुभव

कर सकते हैं । :—

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल
पढ़े संस्कृत जतन करि पण्डित भे विख्यात
पै निज भाषा ज्ञान बिन कहि न सकत एक बात ॥

इसी प्रकार से फारसी, अंगरेजी आदि भाषाओं का उपयोग क्षेत्र अलग है । वह हमें दैनिक कार्य क्षेत्र में सहायता नहीं दे सकता । भारतेंदु जी हिन्दी भाषा की उपयोगिता दिखलाते हुये आगे कहते हैं कि भारत की इस अधोगति का कारण यही है कि हम अपनी मातृभाषा का प्रयोग नहीं करते हैं :—

इक भाषा इक जीव इक मति सब घर के लोग
तबै बनत है सबन सो मिटत मूढता सोग
अन्य भाषाओं की उन्नति इसी कारण अधिक है क्योंकि वे अपने अपने देशों में राष्ट्र भाषा के रूप में प्रयुक्त होती हैं । इसी से भारत की उन्नति के लिये :—

निज भाषा निज धरम निज मान करम व्यौहार
सबै पढावहु वेगि मिलि कहत पुकार पुकार
अतएव भारतेंदु जी इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारत की दुर्दशा का कारण हिन्दी की उपेक्षा है । भारत कुरीतियों के बन्धन में इसीलिये जकड़ा है । सभी प्रकार की उन्नति का उपाय भारतेंदु जी ने अपने काव्य में बहुत ही सुन्दर रूप से दर्शाया है । भारतेंदु जी का ३५ वर्ष का छोटा सा जीवन इस समाज, लोक, धर्म आदि की सेवा में बलि हो गया । किन्तु उस शरीरोत्सर्ग के फल स्वरूप हमारे नवीन साहित्यिक आज भी हिन्दी सेवा की प्रेरणा भारतेंदु जी की अमर आत्मा से करते हैं ।

(२) उद्भूत काव्य तथा अन्य भाषाओं का काव्य :— हिन्दी साहित्य की नवीन उद्भावनाओं के भारतेंदु जी ही प्रवर्तक तथा उन्ना-

यक हैं। नवीन काव्य धारा में उन्होंने सर्व प्रथम राष्ट्रीयता को ग्रहण किया, इसके बाद अन्य भाषाओं से हिन्दी का सम्बन्ध स्थापन करने का प्रयत्न किया। इसमें उन्होंने अन्य भाषाओं में मौलिक रचनाएँ की अथवा अनुवाद कर के हिन्दी का भाण्डार भरा। उर्दू आदि भाषाओं को हिन्दी में सम्मिलित करने का प्रयास उन्होंने उन भाषाओं में रचना करके किया। उनकी धारणा थी कि इसमें भाषा का ही कोष नहीं भरेगा वरन् हिन्दू मुसलिम ऐक्य भी स्थापित होगी। हिन्दी हिन्दुस्तानी की समस्या भी भविष्य में हल होगी। इन्हीं कारणों से खड़ी बोली तथा उर्दू बाहुल्य खड़ी बोली में भारतेन्दु जी ने रचना की।

भारतेंदु जी के ब्रजभाषा काव्य के समान ही खड़ी बोली तथा उर्दू का काव्य भी महत्वशाली है। भारतेन्दु जी की शायरी उर्दू के बड़े बड़े शायरों से होड़ लगती है। परन्तु भारतेन्दु जी का अन्य भाषाओं काव्य करने का विशेष तात्पर्य यही था कि खड़ी बोली भारत की राष्ट्रभाषा हो जाय। इसी आधार पर खड़ी बोली काव्य में सरल प्रचलित उर्दू शब्द पाए जाते हैं जिसे हिन्दी पहले से ही अपना चुकी थी। इसके सिवाय शुद्ध उर्दू काव्य में फारसी अरबी आदि के शब्दों का भी समावेश पाया जाता है।

खड़ी बोली का प्रयोग प्रायः मुक्तक छंदों में हुआ है। वर्णनात्मक कविता में तथा लावनी आदि छंदों में इस खड़ी बोली का प्रयोग अधिक हुआ है। प्रारम्भिक दशा में होते हुए भी भारतेंदु जी ने उसे सफलता पूर्वक निभाने का प्रयास किया है। परन्तु ब्रजभाषा ब्रजभाषा ही थी, उसे वह शायद कभी न पा सकेगी। निस्संदेह इस खड़ी बोली में उर्दू का समावेश हो जाने पर उसका एक नवीन ही रूप निखर आया। भारतेंदु जी की खड़ी बोली का एक उदाहरण देखिये :—

कहाँ हो ऐ हमारे राम प्यारे
किधर तम छोड़ कर हमको सिधारे

+ + +

गई संग मे जनक की जो लली है

उसी से मेरे दिल में बेकली है।

प्रेम तरंग, फूलों का गुच्छा आदि पुस्तकों में खड़ी बोली का प्रयोग देखिए :—

बे परवाह मोहन मीत, ही तो पछताई हो दिल दे के
दूसरा उदाहरण उर्दू ढंग पर लिखा हुआ खड़ी बोली का देखिए :—

यह वह रंग है जिसमें रंगा उस पर न दूसरा रंग चढ़ा

+ + +

बगैर डूबे इसमें किसी को जरा न इसका पता लगा

बिन मस्ती के इश्क के कोई नहीं हुशियार बना

हरीचंद क्या इससे हासिल है व फकत हमने जाना

मजा न पाया वयाँ जिसका गूँगे का गुड़ खाना।

उक्त उदाहरण में उर्दू के बहु प्रचलित सरल शब्दों का ही प्रयोग हुआ है। आगे धीरे धीरे यही खड़ी बोली अरबी फारसी मिश्रित उर्दू के रूप में आ जाती है। भारतेन्दु जी ने अपने उर्दू काव्य में उर्दू की ही भाँति आशिक माशूकों के जलवे दिखाए हैं। फिर भी हमें इस काव्य में भगवान की भक्ति तथा अन्य रसों का समावेश भी मिलता है। हाँ, इस नवीन शैली में अथवा उर्दू या खड़ी बोली में कल्पना के साथ-साथ गम्भीरता का भी काफी समावेश रहा है। ईश्वरोपासना तथा शृङ्गार रस की ही इस काव्य में प्रधानता है। सरलता, सरसता, स्वाभाविकता तथा मार्मिकता आपके ब्रजभाषा काव्य की ही भाँति उर्दू काव्य में भी पाई जाती है। परन्तु उर्दू साहित्य से प्रभावित भारतेन्दु जी ने भी पर्याप्त उर्दूपन का अनुसरण किया और कठिन शब्दों का समावेश अपने काव्य में किया जिससे उसमें क्लिष्टता आ गई। भक्ति विषयक काव्य का एक उदाहरण इस प्रकार है :—

जहाँ देखो वहाँ मौजूद मेरा कृष्ण प्यारा है

हाथ में दामन लिये आते हैं वह किस नाज से ॥
ऊहात्मकता की अतिशयोक्ति ऐसी ही है कि जान पड़ता है कि हृद्-रोग (Palpitation) के कारण उन्निद्र रोग (Insomnia) हो गया है। अब वाह्य सौन्दर्य भी देखिए :—

चंपई गरचे डुपट्टा है तो गुलदार है बेल
सैरे गुलशन को चले आते हैं गुलशन होकर ॥

भारतेन्दु जी का उर्दू काव्य सरस है। बड़े उर्दू कवियों की कविता से इस कविता की तुलना की जा सकती है। इस प्रकार का काव्य गजल और शेरों के अतिरिक्त लावनी आदि में भी हुआ है। लावनी का भी एक उदाहरण देख लीजिए :—

श्री राधा माधव जुगल चरन रस का अपने को मस्त बना
पी प्रेम-पियाला भर भर कर कुछ इस मैं का भी देख मजा
यह वह मैं है जिसके पीने से और ध्यान छुट जाता है
अपने में और दिलवर में फिर कुछ भेद नहीं दिखलाता है ।✓

प्रवाह, शब्दों की सरलता, भावों की अभिव्यक्ति, प्रेम का सच्चा स्वरूप आदि हमें उपर्युक्त काव्य में मिलता है। ऐसे भक्ति काव्य में खुदा, ईश्वर, ईसा आदि में कोई अन्तर नहीं मानता। फिर भी परम्परागत कृष्ण भक्ति ही को वह प्रधान रूप से अपनाता है। भाषा पर अधिकार के साथ-साथ उर्दू काव्य में आपकी कलात्मकता स्पष्ट है। शब्द कोष, भावनाओं का बाहुल्य आपके पास आवश्यकता से अधिक था। स्वभाव की भावुकता, सरलता तथा स्पष्टवादिता की छाया उनके काव्य में पूर्ण रूप से झलक गई है। उनकी भक्ति का एक उदाहरण और देकर हम अन्य भाषाओं के काव्य पर दृष्टि डालेंगे :—

वह नाथ अपनी दयालुता तुम्हें याद हो कि न याद हो
वह जो कौल भक्तों से था किया तुम्हें याद हो कि न याद हो
सुनी गज की ज्योंही व आपका न विलम्ब छन का सहा गया
वहीं दौड़े उठके पियारे पा तुम्हें याद हो कि न याद हो ।

उर्दू के अतिरिक्त भारतेन्दु जी संस्कृत, बँगला, गुजराती, पंजाबी, मराठी, आदि के भी विद्वान थे और इन भाषाओं में भी काव्य रचना किया करते थे। यहाँ पर उनके ज्ञान तथा काव्य कौशल के दो एक उदाहरण देख लेना अनुचित न होगा। संस्कृत पर आपका अच्छा अधिकार था। उनकी एक समस्या पूर्ति से उनके संस्कृत ज्ञान तथा कवित्व शक्ति का कुछ अन्दाज लगा सकते हैं। देखिये 'चंद्रावली चुम्बति' समस्या की पूर्ति कितनी सुन्दर हुई है। प्रकृति वर्णन के साथ शृङ्गार का सौन्दर्य सरल तथा अलङ्कृत भाषा के प्रवाह के साथ बहुत सुन्दर बन पड़ा है:—

चंद्रा, लोक मये चतुष्पथ चये गंधावहे मारुते
चंचच्चालित चंचरीक निचये चारु प्रमोदोदये
कूजत्कोकिल काकली कलकले कालिन्दका कूलके
कुन्जे केलिकलाकुलं प्रियतमं चंद्रावली चुम्बति
भाषा का अनधिकारी व्यक्ति इस प्रकार की सुन्दर रचना समस्या पूर्ति में कभी नहीं कर सकता। अब बंग भाषा की कोमल कान्त पदावली और माधुर्य का उदाहरण देखिये:—

प्रानेर बिना की करी रे, आमी कोथाय जाई
आमी की सहिते पारी विरह जंत्रना भारी
आहा मरी मरी विष खाई
बिरहे व्याकुल अति जल हीन मीन गति
हरि बिना आमि ना बचाई ॥

पंजाबी लोक भाषा पर भी आपका वैसा ही अधिकार दिखलाई देता है जिसका उदाहरण इस प्रकार है:—

बे दरदी बे लड़ि बे लगी तँडे नाल
बे परवाही बारी जी तू मेरा साहबा असी इत्थाँ बिरह हाल
चाहने वाले दी फिकर न तू तुझ नूँ गल्लो दा ज्वाब न स्वाल
'हरीचंद' ततबीर ना सुभदी आशक बैटल-माल ॥

गुजराती मे आप लिखते हैं:—

थारे मुख पर सुन्दर श्याम लटूरी लट लटके छे

जेने जोईने म्हारो मन लाल जाइ जाइ अटके छे

थारा सुन्दर नैन विशाल-प्यारा अति रुडा छे

जैने जोई ने जगना रूप लागे भूँडा छे । आदि ।

इसी प्रकार मारवाड़ी, मराठी तथा अन्य भाषाओं पर आपका अधिकार था । इससे आपके विस्तृत ज्ञान क्षेत्र का कुछ आभास मिलता है । उनकी प्रतिभा उनके काव्य—लालित्य, भाषाधिकार, चमत्कारिता आदि को देखकर विदित होती है ।

(३) मनोरंजन—भारतेन्दु जी के जीवन का अध्ययन करते समय हमने देखा था कि वह कितने विनोदी तथा हास्य प्रिय व्यक्ति थे । काव्य वर्गीकरण में भी उनकी मनोरंजकता पर दृष्टिपात किया जा चुका है । यहाँ पर उनके मनोरंजन काव्य पर एक दृष्टि डालेंगे । सर्व प्रथम उनके हास-परिहास तथा उनकी कौतुक प्रियता को लें । स्वभाव से ही विनोदी होने के कारण उनके काव्य में स्वाभाविक रूप से हास्य का समावेश हुआ जिससे न तो विषय को स्पष्ट करने में भद्दापन आता है और न सौन्दर्य नष्ट होता है । मर्यादा का उल्लंघन कहीं पर भी प्रदर्शित नहीं होता । यह हास्य तथा व्यंग्य उनके सम्पूर्ण काव्य क्षेत्र में समान रूप से पाया जाता है । आलसी, लोभी, कुचाली, मद्यप, पाश्चात्य सम्यता, अंगरेजी, ग्रेजुएट, खिताब आदि इसी प्रकार के कितने ही विषयों पर मार्मिक व्यंग्य तथा हास्य पूर्ण रचनाएँ हुई हैं । हँसी-हँसी में ही आपने समाज सुधार का बहुत ही महत्वशाली कार्य किया है । अब इसके कुछ उदाहरण देखिए । छेकापन्हुति के अनुसार एक मुकरी देखिए:—

तीन बुलाए तेरह आवैं निज निज विपदा रोइ सुनावैं

आँखो फूटे भरै न पेट, ऐ सखि सज्जन नहिं ग्रेजुएट ॥

तीन बुलाने पर तेरह आने का भाव बड़ा ही दयनीय है । आजकल ग्रेजुएटों की बाढ़ पर कितना मार्मिक व्यंग्य है । पढ़ते-पढ़ते आँखें फोड़

लीं परन्तु पेट भरने का प्रबन्ध भी न कर सके ! ऐसी शिक्षा से क्या लाभ ? अब अंगरेजी का प्रभाव भारतीयों पर देखिए:—

सब गुरजन को बुरो बतावै अपनी खिचड़ी अलग पकावै

भीतर तत्व न भूठी तेजी ऐ सखि सज्जन नहि अंगरेजी ।

अंगरेजी भाषा के प्रभाव से संस्कृति का जो नाश हो रहा है उस पर मार्मिक व्यंग्य है । अब भारत सरकार की पुलिस के विषय में भारतेन्दु जी की धारणा देखिये:—

रूप दिखावत सर्वस लूटै फंदे में जो पड़ै न छूटै ।

कपट कटारी हिय मे हूलसि, क्यों सखि सज्जन नहि सखि पुलिस ॥
पुलिस की “कपट कटारी” रूप दिखावत सर्वस लूटै, “फंदे मे जो पड़ै न छूटै” आदि वाक्य पुलिस वालों की कूटनीति का दृश्य खींच देते हैं ।
चापलूसों की दशा का भी वर्णन देखिये:—

इनकी उनकी खिदमत करो रुपया देते देते मरौ

तब आवै मोहि करन खराब क्यों सखि सज्जन नही खिताब ।

इस प्रकार के व्यंग्यों से भारतेन्दु जी की कविता सुसज्जित है ।

अंगरेजी सभ्यता का विष भारत के बच्चे-बच्चे के मन पर पड़ रहा है । एक स्त्री का ऐसा ही मानसिक परिवर्तन देखिये:—

लँहगा डुपट्टा नीको ना लागे

मेमन का गौन मँगाय नही देत्यों

सरसो का उबटन हम न लगैबै

साबुन से देहिया मलाय नही देत्यों”

भारत की सामाजिक अवस्था को देखकर कभी-कभी उनका क्षोभ फूट पड़ता है:—

लोग क्रिस्तान भए जाथै बनथै साहेब

कैसा अब पुन्न धरम गङ्गा नहाना कैसा

धोय कै लाज सरम पी गये सब लड़कन लोग

काहे के बाप मतारी रहें नाना कैसा

बन्दर सभा में शत्रुमूर्ग परी के गीत द्वारा नणे बाजो पर छीटा कसा गया है —

अफयूम मदक चर्स ओ चंदू के बदौलत ।

यारों के सदा रहते है रुखसार बसन्ती ॥

मुख का पीलापन जरूर ही बसन्ती रुखसार प्रदर्शित करता है । फैशन परस्त भारतीयों को कर्ज लेना कितना सहल हो गया है, देखिये:—

तहवील जो खाली हो तो कर्ज मँगालो ।

जोड़ा हो परीजान का तय्यार बसन्ती ॥

इसी प्रकार के अनेक वर्गों विभिन्न विषयों पर हुये हैं जिन सबके उदाहरण नहीं दिये जा सकते । भारतेन्दु जी के व्यंग्य समयानुकूल हैं । समाज सुधार, धर्म सुधार, साहित्य सुधार के विचार से ही लिखे गये हैं । अंग्रेज स्तोत्र, कंकड़ स्तोत्र, अन्धेर नगरी आदि के हास्य सुन्दर तथा लोकप्रिय हैं ।

सगीत भी भारतेन्दु जी के मनोरजन का एक साधन था । पक्षियों को पालने का आपको शौक था । शतरज, चौसर आदि आप खूब खेला करते थे । शतरज में घोड़े की चाल पर आपने तीन छप्पय लिखे थे । इन सब बातों से स्पष्ट होता है कि उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी । गम्भीर अध्ययन के साथ-साथ छोटी-छोटी बातों में भी वह उतनी ही दिलचस्पी लेते थे और उसे बहुत ही कुशलतापूर्वक निभाते थे । ताश के पत्तों के उनके रखे हुये भारतीय देवी देवताओं के नामों से स्पष्ट होता है कि उनमें अपनी मौलिकता थी और प्रत्येक बात को भारतीय साँचे में ढालने के इच्छुक रहते थे । पहली अप्रिल के किस्से उनके बहुत प्रसिद्ध हैं । स्टाम्प, चित्र, वस्तु संग्रह के वे बहुत बड़े प्रेमी थे । आपकी मनोरंजकता केवल अपने ही तक सीमित नहीं थी वरन् समाज की हितकामना और देश का कल्याण उसके प्रत्येक स्तर में छिपा रहता था ।

(४) अनुवादः—हिन्दी साहित्य में विभिन्न विषयों का अभाव देख कर भारतेंदु जी ने अनुवाद कार्य द्वारा हिन्दी के भाण्डार को भरने का इरादा किया। इस प्रकार की साहित्य रचना के विषय में उन्होंने स्पष्ट कहा है विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध होने वाले ज्ञान को हमें लूट लूट कर अपने यहाँ एकत्र करना चाहिये:—

अंगरेजी अरु फारसी अरबी संस्कृत डेर
खुले खजाने तिर्नाहि क्यो लूटत लावहु डेर
सबको सार निकाल कै पुस्तक रचहु बनाय
छोटी बड़ी अनेक विध विविध विषय की लाय
मेटहु तम अज्ञान को सुखी होहु सब कोय
बाल वृद्ध नर नारि सब विद्या संजुत होय ।

इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर भारतेंदु जी ने प्रथम तो भारत की लग-भग सभी भाषाओं का अध्ययन किया और फिर उनसे अपना साहित्य भरने के लिये अनुवाद का कार्य प्रारम्भ किया। इस पहले ही कह चुके हैं कि अनुवाद का कार्य सरल नहीं। किन्तु बहुश्रुत एवम् बहुज्ञ होने के कारण उनके अनुवाद बहुत कुछ स्वाभाविक हो सके हैं। हिन्दी के अनिरिक्त संस्कृत, गुजराती, बँगला, पंजाबी, मराठी, उर्दू और अँग्रेजी पर आपका विशेष अधिकार था इसी कारण इन सब भाषाओं में संस्कृत का आप पर सबसे गहरा प्रभाव था। संस्कृत के गीत गोविंद का अनुवाद उत्तम है। हम पहले ही कह चुके हैं इन सभी भाषाओं में संस्कृत का आप पर सबसे गहरा प्रभाव था। संस्कृत के गीत गोविंद का अनुवाद आपने बहुत सरस व मधुर किया है। अनुवाद के सिवाय और भी मुक्तक पद्यों के छाया अनुवाद हुये हैं। संस्कृत में आपकी लिखी अष्टपदी तथा कजली संस्कृत काव्य के भावों के आधार पर है। उदाहरण के लिये अष्टपदी दी जा रही है। इसको गीत गोविंद के ढंग पर लिखने का प्रयास किया गया है और यह प्रयास बहुत कुछ सफल भी हुआ है। भाषा की सरसता भावों का संगठन संस्कृत होते हुये भी सरल

शब्दावली आदि की ओर विशेष ध्यान रक्खा गया है, जिससे काव्य सौंदर्य बढ़ गया है:—

रासे रमयति कृष्ण राधा

हृदि निधाय गाढालिङ्गन कृत हृत विपहातप बाधा
अश्लिष्यति चुम्बति परिरम्भति पुनः पुनः प्राणेशम्
सात्त्विक भावोदय शिथि लायत मुक्ताङ्कुश्वित केशम्
भुज लतिका बन्धन माबद्धं काम कल्यतरु रूपम्
सीमन्तिनी कोटिशत मोहन सुन्दर गोकुल भूपम् । आदि
इसी प्रकार एक कजली का भी उदाहरण देखिये । संस्कृत में कजली
का प्रवेश भारतेंदु जी के द्वारा ही प्रथम बार हुआ । यह राग वर्षा ऋतु
में अधिकतर काशी तथा मिर्जापुर में गाया जाता है:—

हरि हरि धीर समीरे विहरति राधा कालिदी तीरे

कूजति कल कल रव कोकावलि-कारडव-कीरे

वर्षति चपला चारु अयत्कुन सघन सुघन नीरे

गायति निज पद-पद्म रेण-स्त कविवर हरिश्चंद्र धीरे ॥

अधिक न कह कर इतना कहना ही पर्याप्त है कि अपने भाषाधिकार तथा अपनी सहृदयता के कारण भारतेंदु जी के अनुवाद बहुत सुन्दर हुये हैं । गद्य का गद्य में अनुवाद करना उतना कठिन नहीं है जितना पद्य का पद्य में । दूसरे कवि पद्य बद्ध भावों को ज्यों का त्यों पद्य बद्ध अनुवादित करना अति दुष्कर कार्य है । किन्तु भारतेंदु जी के अनुवादों से यह पता नहीं चलता कि यह अनुवाद है वरन् उनकी भाषा, उनके भाव सप्रवाह, सरसता तथा सरलता से व्यक्त किये हुये दृष्टिगन होते हैं । संगीत छंद आदि के रूप में भी अन्तर नहीं आता । काव्य वर्गीकरण के अन्तर्गत गीतगोविंद का प्रथम मंगलाचरण श्लोक और उसका अनुवाद दिये जा चुके हैं । उससे स्पष्ट है कि भारतेंदु जी की अनुवाद शक्ति कितनी प्रौढ़ है । यहाँ पर हम मुद्राराक्षस नाटक के अनुवाद का एक खंड दिया जाता है । श्लोक की अलंकारिता तथा

ल्लिख्यता को ध्यान रखते हुये भारतेदु जी का अनुवाद और देखिये कि वे कहाँ तक उसे निभा सके हैं । कितनी सरलता पूर्वक अपने सब्य्या में उन्होंने भावसाम्य उपस्थित किया है —

धन्या केयं स्थिता ते शिरशि शशिकला किन्तु नामतै दस्याः
नामे तास्यास्त देतत्परिचित मपि ते विस्मृत कस्य हेतोः
नारी पृच्छामि नेदुं कथयतु विजया न प्रकाण यदीन्दु
देव्या निहनोतु मिच्छोरिति मुर सरितम् शाठ्यमव्या द्विमोर्वः

अब इसका अनुवाद देखिये.—

कौन है सीम पै ? चंद्रकला, कहा याको है नाम यही त्रिपुरारी
हाँ यही नाम है भूलि गई किमि जानत हू तुम प्रानपियारी
नारिहि पूछत चद्रहि नाहि कहै विजया जदि चन्द्र लबारी
यो गिरि जै छलि गंग छिपावत ईश हरो सब पीर तुम्हरी ।

संस्कृत की शैली को छोड़कर इसमें अनुवाद की कोई शिथिलता नहीं मिलती है । वार्तालाप का रूप वैसा ही सगृहित है जैसा संस्कृत श्लोक में । कर्पूरमंजरी में इसी प्रकार से प्राकृत से अनुवाद हुये हैं । एक उदाहरण उसका भी देखिए:—

सहदिअ हणिसाहि दीहरा सांस दडा
सह मणि बलएहि वाह धारा गलति
तुअ सुहअ विअोएती अडब्बि विरीए
सह अ तणूल आए दुब्बला जीवि आसा ॥

अनुवाद:- विरह अनल दहकत नित छाती

दुखद उसास बढत दिन राती

गिरत आँमु सँग सखि करिचूरी

तन मन जिअन आस भई भूरी ॥

कुल मिलाकर यह स्पष्ट है कि भारतेदु जी ने पद्य का अनुवाद पद्य और गद्य दोनों में तथा पद्य का पद्य में किया और सब में सफलता प्राप्त की । संस्कृत तथा प्राकृत के सिवाय बँगला भाषा से विद्यासुन्दर

नाटक तथा अँगरेजी से मर्चेन्ट आफ वेनिस' का 'दुर्लभ वधु' के नाम से अनुवाद पाया जाता है। यहाँ पर हमारा सम्बन्ध केवल पद्य भाग से ही और पद्य में प्रधान अनुवाद गीतगोविन्द का ही है जो गीतगोविन्द नन्द के नाम से हुआ है जिसका उदाहरण हम दे चुके हैं। निष्कर्ष रूप में भारतेन्दु जी का स्वतन्त्र काव्य जितना सुन्दर और स्वाभाविक हुआ है उतने ही साफल्य उनके अनुवाद भी है। वरन् अनुवादों की सफलता का अधिक श्रेय इनको मिलना चाहिए, क्योंकि इस कार्य में मौलिक रचना से अधिक सतुलित मस्तिष्क की आवश्यकता है।

पंचम अध्याय

(निष्कर्ष और भारतेंदु जी का हिन्दी साहित्य में स्थान)

भारतेंदु जी के काव्य के अनेक अंगों पर दृष्टिपात कर लेने के उपरान्त अब हम सारांश रूप में उनकी कृति पर एक विहगम दृष्टि डाल लें।

वीर कव्य :— ब्रिटिश साम्राज्य के स्थापित हो जाने के उपरान्त भारत में शान्ति स्थापित हो चुकी थी। राजनीतिक सामाजिक अवस्था स्थिर हो जाने के कारण वीर काव्य की कोई आवश्यकता नहीं थी। यद्यपि आज फिर वीर काव्य के ग्रन्थों का पठन पाठन जारी हो गया है किन्तु उस समय जनता का भुकाव इस ओर दृष्टि गोचर नहीं होता था। फिर भी देश की दासता देश की उन्नति के लिए तथा प्राचीन परम्परा को स्थापित बनाए रहने के लिए भारतेंदु जी ने मुक्तक रूपमें इसकी रचना की, और बहुत सुन्दर रचना की। महाकवि भूषण के पश्चात् वीरत्व की झलक भारतेंदु जी में पर्याप्त पाई गई। वीरकाल की रचनाओं की ही भाँति भारतेंदु ने भी रचनाएँ की किन्तु आपके काव्य में व्यर्थ की उद्दंडता तथा भाषाडंबर के द्वारा वीरत्व प्रदर्शित नहीं किया गया। वरन् बुद्धि और हृदय के सहयोग से वीरत्व प्रदर्शन

अधिक उचित समझा गया है।

भक्ति काव्य :—वैष्णव धर्म के अनुयायी होने के कारण भारतेंदु जी ने भक्ति काल के कवियों की काव्य परम्परा का अनुसरण किया यद्यपि इस समय अनेक नए-नए धर्मों का उत्थान हुआ किन्तु आप अनन्य वैष्णव धर्मावलम्बी बने रहे। कृष्णभक्ति के सिवाय आप अन्य भक्तियों को अनुचित नहीं समझते थे फिर भी सब देवताओं में आपने इष्ट देव भगवान् श्री कृष्ण को ही बना लिया था। और इसी कारण आप पर कर्म काण्ड का भी गहरा प्रभाव था। विद्यापति, सूर, तुलसी आदि की पद शैली का अनुसरण आपने किया। छन्दों में भी रसखान आदि के समान सरस सवैया लिखे। भक्ति की कविताओं में लीला, नखशिख, षट्शतु का वर्णन प्रधान है। भक्ति काल की अवतार लीलाओं के भारतेंदु जी अनन्य भक्त थे और इसी कारण दान लीला, देवी छद्म लीला, रानी छद्म लीला, वर्षा ऋतु, होली आदि काव्यों का श्रृंजन हुआ। श्रृंगार भावना का भी परम्परा के अनुसार आधिक्य स्पष्ट रूप से पाया जाता है। यह प्रधानतः मुक्तक तथा कुछ खण्ड काव्य में पाया जाता है। साथ ही इस काव्य के अन्दर एक नवीन भावना का भी समावेश भारतेंदु जी ने किया, वह यह कि भक्ति-साहित्य को देखकर उन्होंने धार्मिक तथा सामाजिक सुधारों का भी समावेश इसी काव्य में कर दिया। उधर भक्ति काव्य पर रीति काव्य का प्रभाव भी पड़ा। छंदों का प्रयोग भक्ति तथा श्रृंगारी कवियों की ही भाँति हुआ। नवीन भावनाओं को गजालों, कजली, लावनी आदि छन्दों में आपने व्यक्त किया, जो लोकप्रिय राग है। संगीत का ज्ञान आपके इस काव्य में विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। पद सूर और तुलसी की भाँति लिखे गए। आपका काव्य नीति, कर्मकाण्ड, भक्ति और श्रृंगार सभी से परिपूर्ण है। दूसरे प्रकार की कविता भक्त सर्वस्व, प्रेम मालिका, प्रेमाश्रुवर्णन, प्रेम प्रलाप, राग-संग्रह, मधुमुकुल, विनय प्रेम पचासा ग्रन्थों में पाई जाती है। इन पद्यों में सरस, सरल, स्वाभाविक विचार

तथा शैली वाले काव्य का दर्शन होता है। भावुकता, मार्मिकता अथवा सहृदयता से प्रत्येक पंक्ति रगी हुई है। भावनाओं की गम्भीरता के साथ साथ उनके उद्गार इस ढंग से व्यक्त हुए हैं कि कवि की सच्ची अनुभूति पाठक के हृदय को प्रभावित कर देती है। गीतकाव्य का भारतेन्दु जी के साहित्य में एक विशेष स्थान है। वेदों को भारतेन्दु जी संस्कृति का आधार मानते थे साथ ही अन्य पौराणिक मतों को भी आदर की दृष्टि से देखते थे। इसी से वैशाख महात्म्य, जैन कुतूहल, मूर्तिपूजा, गङ्गा महात्म्य, कार्तिक स्नान, रामलीला आदि ग्रन्थों की उन्होंने रचना की।

रीति काव्यः—हम पहले ही देख चुके हैं अंगरेजी राज्य स्थापित हो जाने के कारण देशवासी शान्ति चाहते थे। शान्ति के साथ ही साथ जनता सासारिक सुखों की ओर बढ़ी। सहारे के लिये रीतिकाल की भक्ति तथा शृङ्गार की आड़ लेकर कविगण काव्य रचना करने लगे। किन्तु शृङ्गार का विशद वर्णन रीतिकाल में हो चुका था, भारतेन्दु जी ने शृङ्गार काव्य की अलंकारिता तथा शास्त्रीयता पर उतना ध्यान नहीं दिया। वर्णन स्वाभाविकता, मार्मिकता, तथा सहृदयता को आपने विशेष रूप से अपनाने का प्रयत्न किया। शृङ्गार वर्णन उन्होंने जीवन की सुन्दर छटाओं एवम् दृश्यों का चित्रण किया तथा प्रेम व्यापार के विभिन्न अंगों का मर्मस्पर्शी वर्णन सरल तथा प्रवाहमयी भाषा में किया। राधाकृष्ण के जीवन की शृङ्गारमयी भावनाओं के समावेश से उन्होंने अपने काव्य को सुसज्जित किया। लीला, सुकुमारता, नख-शिख, सुन्दर स्वरूप तथा कामकला की विवेचना उन्होंने सुन्दर ढंग से की। रीतिकाल की भाँति नग्नता के दृश्यों को आपने अपने काव्य में यथासम्भव स्थान नहीं दिया। इस प्रकार से ऐहिक प्रेम में भी सच्चा भारतीय आदर्श, सभ्य और शिष्ट प्रेम हमें भारतेन्दु जी के काव्य में प्राप्त होता। नीति, समाज-सुधार के साथ भारत तथा प्रत्येक भारतीय की उन्नति का पाठ आपने अपने काव्य में पढ़ाने का प्रयत्न किया है। द्वेष, वैमनस्य तथा अन्य दुर्गुणों से आपका काव्य दूर है।

उसमे ग्रन्थाध आनन्द का श्रोत बहता है । अलंकार तथा रस का समावेश प्राचीन परिपाटी ही की भाँति आपने भी किया है । कवित्त, सवय्या, छप्पय, दोहा, सोरठा, कुण्डलिया, रोला आदि छन्दों का प्रयोग भी किया गया है । अलंकारों और प्राचीन विषयों पर उतना ध्यान नहीं दिया गया है । जितना रीतिकाल के कवियों ने दिया था । प्राचीन छंदों के अतिरिक्त मलार, बारहमासा, रेखता, गजल, कजली तथा उर्दू के बहो (छन्दों) में कविता विशेष रूप से पाई जाती है । भारतेन्दु जी ने सरल साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रयोग किया । परन्तु नवीन शैली के काव्य में खड़ी बोली तथा उर्दू का काव्य आ जाता है ।

यह तो हम देख ही चुके हैं कि भारतेन्दु जी की काव्यधारा एक ओर तो प्राचीन परिपाटी को लेकर चली है और दूसरी ओर नवीन विचारधारा । यह धारा स्वभावतः प्रारम्भ हो जाती है । किन्तु भारतेन्दु जी कबीर, सूर, तुलसी, देव, बिहारी, मीरा आदि कवियों को इतनी जल्दी कैसे भुला सकते थे । इसी कारण सवय्या तथा कवित्त वह अपने कवि समाज में मनोरंजन के रूप में बैठे-बैठे बनाया करते थे । किन्तु प्राचीन परिपाटी पर चलते हुए भी इस काव्य में शब्दों का तोड़-मरोड़ नहीं पाया जाता । जिस प्रकार से शृङ्गारी कवि अक्षरों तथा शब्दों का तोड़-मरोड़ किया करते थे वैसे भारतेन्दु जी नहीं करते थे । कुल मिलाकर आपके काव्य को देखकर कह सकते हैं कि रस, अलंकार, छंद शास्त्र का अनुकरण रीतिकाल के ही समान आपने भी किया । किन्तु आचार्यत्व प्रदर्शन की ओर आपका ध्यान नहीं था और यह अच्छा ही था, क्योंकि इससे आपके काव्य को स्वतन्त्र प्रवाह का अवसर मिला ।

नवीन परिपाटी:—और अब भारतेन्दु जी की इस नवीन काव्य प्रणाली में देशकाल के प्रभाव से परिवर्तन हुआ । पश्चिमी सभ्यता पश्चिमी साहित्य, तथा अन्य प्रभावों के कारण प्राचीन धारा के मार्ग को मोड़ना ही पड़ा । अब तक भाषा में अनेक परिवर्तन हो चुके थे ।

शब्दों का बाहुल्य बढ़ता जाता था और राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आर्थिक तथा अन्य परिस्थितियों के कारण साहित्यिक परिस्थिति में भी परिवर्तन अवश्यम्भावी था। फिर भी प्राचीन परम्परा इतनी शीघ्रता से नहीं हट सकती थी। सामूहिक रूप में कह सकते हैं कि यह नवीन परिपाटी न तो पूर्ण रूपेण नवीन ही थी और न प्राचीन ही। परन्तु भारतेन्दु जी इस परिपाटी को मोड़ने वालों में प्रथम थे। सर्व प्रथम ये अंगरेजी, बङ्गला, संस्कृत आदि के विषय अपने काव्य में लाने लगे। सामाजिक सुधार, धार्मिक अन्धविश्वास, हिन्दी भाषा विचार, राष्ट्र प्रेम आदि विषयों को लेकर आपका काव्य दिनो दिन उन्नति करने लगा। विषय के सिवाय उर्दू छंदों का प्रभाव आप पर बहुत पड़ा। साथ ही भारतेन्दु जी संस्कृत, उर्दू, बङ्गला, गुजराती, मराठी, मारवाड़ी आदि भाषाओं के ज्ञान की सहायता से अनुवाद तथा नवीन भावनाओं का समावेश करने लगे। इस नवीन परिपाटी में भारतेन्दु जी का काव्य बहुत कुछ वर्णनात्मक है और सासारिकता से पूर्ण है। देश के कल्याण के लिए भिन्न-भिन्न चित्रों का संग्रह सा किया गया है जिसे देखकर जनता की आँखें अपने अध पतन पर पड़ें। प्राचीन गौरव का स्मरण दिलाकर भारतेन्दु जी चाहते हैं कि हमारा मस्तक अब भी उतना ही ऊँचा रहे जितना अतीतकाल में था।

(भारतेन्दु जी का हिन्दी साहित्य में स्थान)

भारतेन्दु जी के काव्य की साझोंपाङ्ग आलोचना तो कोई अधिकारी आलोचक ही कर सकता है, हमने तो इन थोड़े से पृष्ठों में केवल उनके काव्य पर दृष्टिपात मात्र किया गया है। इतने थोड़े स्थान में भारतेन्दु जी के वृहत्-काव्य का वर्णन हो भी कैसे सकता था? यहाँ तो केवल उनके काव्य के विभिन्न अङ्गों पर दृष्टिपात के साथ साथ उसका रसास्वादन पाठकों को करा देने का प्रयत्न किया गया है। उनके काव्य में दोष दर्शन का प्रयत्न एक प्रकार से किया ही नहीं गया उसका कारण यह है कि हमें आम खाने से मतलब है गुठलियाँ गिनने से नहीं।

ऐसा कौन सा मनुष्य है जिसमें अवगुण नहीं फिर हम यह कह ही कैसे सकते हैं कि हमारे नायक कवि में अवगुण थे ही नहीं। परन्तु उनके पक्ष में इतना तो हम मुक्त कठ से कह ही सकते हैं कि देशकाल की परिस्थितियों को देखते हुये भारतेन्दु जी एक महान व्यक्ति तथा कलाकार थे। इसको सभी स्वीकार करेंगे।

इस पुस्तक में भारतेन्दु जी की विभिन्न विचार धाराओं का स्पष्टीकरण करने का प्रयत्न किया गया है साथ ही उनके काव्य का सक्षिप्त रूप में आलोचनात्मक दृष्टि से अवलोकन भी। काव्य खण्ड के अतिरिक्त नाटक, इतिहास, गद्य आदि का भी सक्षिप्त परिचय यद्यपि दिया गया है वह भी केवल इस धारणा से कि भारतेन्दु जी की प्रतिभा में कोई शका न कर सके, परन्तु वह हमारा क्षेत्र यहां नहीं रहा है। भारतेन्दु जी प्राचीन गौरव, प्राचीन काव्य प्रणाली को महत्व देते हुये भी नवीन तथा आधुनिक हिन्दी के जन्म दाता हैं। भारत में हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का उनका सबसे पहला प्रयत्न था। राजनीतिक दृष्टि से ऐक्य तथा भारत की उन्नति ही उनका ध्येय था। अपने ३५ वर्ष के छोटे से जीवन में वह ऐसे कार्य कर गए जिन्हें भारतवासी कभी भुला नहीं सकते। वस हिन्दी साहित्य के एक अचल स्तम्भ हैं।

यह प्रश्न हो सकता है कि भारतेन्दु जी का हिन्दी साहित्य क्षेत्र में क्या स्थान है? इसके उत्तर में स्वयं कुछ न कह कर हिन्दी के विद्वान आलोचकों की सम्मतियों द्वारा ही इसका निर्णय करेंगे। सर्व प्रथम प्राचीन तथा अर्वाचीन हिन्दी साहित्य के विद्वान एवम् समालोचक पूज्य मिश्रबंशु की सम्मति हम यहाँ उद्धृत करेंगे। इन्होंने भारतेन्दु जी को एक श्रेष्ठ कवि माना है और इसी कारण इन्होंने अपने “नवरत्न” में उन्हें भी स्थान दिया है। भारतेन्दु जी के काव्य के विषय में वह लिखते हैं:—“इनके काव्य में सबसे अधिक और उत्तम वर्णन प्रेम का है। इन्होंने ऐसा अनोखा हृदय पाया था कि उसमें प्रेम की मात्रा अथाह थी, अतः इनके सब लेखों में उसी की विशेषता रहती थी.....इनमें

ईश्वरीय तथा सांसारिक दोनों प्रकार का प्रेम विशेष रूप से था । और इन दोनों प्रकार के प्रेमों के वर्णन इनके काव्य में हर जगह मौजूद है ।” और इसी कारण हिन्दी साहित्य में उन्हें अपने समय का प्रतिनिधि कवि मानते हैं । इस विषय में इनका कथन है “यह महाशय अपने समय के प्रतिनिधि कवि थे ...” हिन्दी साहित्य को जिन जिन बातों की आवश्यकता थी प्रायः उन सभी विषयों पर उन्होंने साहित्य रचना की है ऐसा उन्नतिशील और प्रतिनिधि कवि भाषा साहित्य में एक भी नहीं हुआ ।” हिन्दी साहित्य के द्वितीय महारथी श्री पण्डित रामचन्द्रजी शुल्क अपने साहित्य के इतिहास में भारतेंदु के काव्य के विषय में लिखते हैं-“भारतेंदु जी के श्रृंगार रस के कवित्त-सवय्ये बड़े ही सरस और मर्मस्पर्शी होते थे ।” कवित्त सवय्यों से बहुत अधिक भक्ति और श्रृंगार के पद और गाने उन्होंने बनाए ।” उनकी अधिकतर कविता कृष्णभक्ति कवियों के अनुकरण पर रचे पदों के रूप में ही है.....“आगे चलकर नवीन शैली के विषय में लिखते हैं नवीन धारा के बीच भारतेंदु की वाणी का सबसे ऊँचा स्वर देशभक्ति का था.....बहुत सी स्वतंत्र कविताएँ भी उन्होंने लिखी जिनमें देश के अतीत गौरव गाथा का गर्व, कही वर्तमान अधोगति की क्षोभ भरी वेदना कही भविष्य की भावना से जगी हुई चिन्ता इत्यादि अनेक पुनीत भावों का संचार पाया जाता है.....भारतेंदु जी ने हिन्दी काव्य को केवल नए-नए विषयों की और ही उन्मुख किया उसके भीतर किसी नवीन विधान या प्राणाली का सूत्रपात नहीं किया । दूसरी बात उनके सम्बन्ध में ध्यान देने की यह है कि वे केवल “नर प्रकृति” के कवि थे, बाह्य प्रकृति की अनन्त रूपता के साथ उनके हृदय का सामंजस्य नहीं पाया जाता ।”

हिन्दी साहित्य के तृतीय महारथी विमल बी० ए० पास, राष्ट्र भाषा के प्रचारक स्वर्गीय डा० श्यामसुन्दर दास जी ने भारतेंदु जी के हिन्दी साहित्य में अवतरित होने पर लिखा है:-

“मुक्त केशिनी शुभ्र वसना, परवशा भारतमाता की करूणोज्ज्वल

छवि देश ने और देश के साहित्य ने उसी दिन देखी थी और उसी दिन सुनी थी टूटी फूटी श्रृंगारिक वीणा के बदले एक गम्भीर भंकार, जिसे सुगते ही एक नवीन जीवन के उल्लास में वह नाच उठा था। वह दिवस निश्चय ही परम भगलमय था क्यो कि आज भी उसका स्मरण कर हम अपने को सौभाग्य शाली समझते हैं” “भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कविता हिन्दी में नवीन प्रणाली की पताका लेकर आई थी उस समय के अन्य कवियों ने सच्चे सैनिकों की भाँति अपने सेनापति का अनुकरण किया था यहाँ हम हरिश्चन्द्र की फुटकर रचनाओं की बात नहीं कहते जो चली आती हुई श्रृंगारिक कविता की श्रेणी की ही मानी जायगी।” बाबू श्यामसुन्दर दास जी भारतेन्दु जी को एक बहुत ही महत्वशाली कवि समझते थे उन्होंने लिखा है”-यह ठीक है कि शुद्ध काव्य समीक्षा की दृष्टि से उनकी रचनाएँ सूर और तुलसी की कोटि को नहीं पहुँचती और यह भी ठीक है कि कबीर, जायसी आदि कवियों की वारणी समता भी वे नहीं कर सकते पर इससे उनका महत्व किसी प्रकार कम नहीं होता। रीति कविता की शताब्दियों से चली आती हुई गंदी गली से निकल शुद्ध वायु में विचरण करने का श्रेय हरिश्चन्द्र को पूरा पूरा प्राप्त है।” हिन्दी साहित्य में स्थान निर्धारित करते हुए फिर लिखते हैं “भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का वास्तविक महत्व परिवर्तन उपस्थित करने में और साहित्य को शुद्ध मार्ग से ले चलने में है, उच्च कोटि की काव्य रचना करने में उतना नहीं है श्रृंगारिक कविता की प्रबल वेग से बहती हुई जिस धारा का अवरोध करने में हिन्दी के प्रसिद्ध वीर कवि भूषण समर्थ नहीं हुए थे, भारतेन्दु उसमें पूर्णतः सफल हुये। इसमें भी उनके उच्च पद का पता लग सकता है।

यहाँ पर सूचित कर देना आवश्यक है कि भारतेन्दु जी के काव्य के विषय में जो कुछ भी हम ऊपर लिख आए हैं उसकी पुष्टि इन महापुरुषों के उद्धरणों से होती जा रही है। भारतेन्दु जी के फुफेर भाई श्री राधा कृष्ण दासजी ने भारतेन्दु जी की जीवनी सरस्वती मासिक पत्रिका में

प्रकाशित करवाई थी। भारतेन्दु जी के काव्य के विषय में वह लिखते हैं “इनकी कविता पांडित्य पूर्ण होती थी। उन्हें अलंकार पूर्ण श्लेष, यमक इत्यादि की कविता पर विशेष रुचि थी परन्तु नीति शृङ्गार और शान्त रस की कविता इनकी सरल और सरस भी अत्यन्त ही होती थी।” इनकी बुद्धि का विकास अत्यन्त अल्प वय में ही पूरा पूरा हो गया था। संस्कृत में कविता रचने की सामर्थ्य थी, समस्या पूर्ति बात की बात में करते थे ऐसे कवि उस समय कम होते थे। विद्वान ऐसा थे कि स्वामी दयानंद सरस्वती सरीखे विद्वान से इनका शास्त्रार्थ प्रसिद्ध ही है।

श्रीमान बाबू शिवनन्दन सहाय ने अपनी *Life of Harish Chandra* के समीक्षा खण्ड में भारतेन्दु जी की कविता की समीक्षा करते हुए लिखा है “उन की कविता गुणों में बड़ी चढ़ी क्यों न हो परन्तु इनकी रचना में बहुत नवीनता देखी जाती है और इनकी रचना औरों की अपेक्षा सरल मर्मस्पर्शी और उत्तेजक है। इनके पदों में श्री सूरदास जी के पदों सा स्वाद मिलता है स्काट के समान इन्हें भी लिखने के लिए समय सामग्री का कुछ विचार नहीं रहता था। स्मरणशक्ति भी वैसी ही बलवती थी जिस विषय का वर्णन करते थे उसका चित्र आँखों के सामने खड़ा कर देते थे। सारांश यह कि हरिभक्त, राजभक्त, देशभक्त, सरल उदारचिन्त होने के अनिरिक्त हरिश्चन्द्र निस्संदेह एक प्राकृत कवि थे और ईश्वर की सृष्टि में यह एक अपूर्व व्यक्ति भारतवर्ष में हुये जिसकी अवश्य हम लोगों को ममता होनी चाहिए।”

भारतेन्दु जी के दौहित्र श्रीबाबू बृजरत्नदास जी भारतेन्दु के काव्य तथा उनका हिन्दी साहित्य में स्थान निर्धारित करते हुये कहते हैं—“यह केवल कवि ही नहीं गद्य के सुलेखक भी थे। यह राजभक्त, देशभक्त दोनों ही थे प्राचीन गौरव का पूर्ण आदर करते हुये यह नवीन विचारों के प्रति भी पूर्णतया उदार थे। इस प्रचीनता तथा नवीनता के सुन्दर सामंजस्य के साथ उनकी सबसे बड़ी विशेषता आधुनिक हिन्दी को जन्म देकर उसे

भारत की राष्ट्र भाषा बनाने का सफल प्रयास है और इसी से वे आधुनिक हिन्दी के जन्म दाता कहे गए हैं".....
हिन्दी पद्य साहित्य की भाषा को परिमार्जित कर उसमें नवीन युग के अनुकूल कविता धारा की प्रवाहित कर कर हिन्दी साहित्य को अपना चिरऋणी कर रक्खा है। इनकी प्रतिभा अपनी मातृभूमि तथा मातृभाषा की ऋणियों के निरीक्षण में जितनी पटु थी उतनी ही उसके उत्थान के प्रयत्न में भी दत्तचित्त रही थी। भारत की चिन्ता में व्यग्र तथा हिन्दी के प्रेम के मतवाले भारतेन्दु जी ने अपना तन मन धन सब कुछ इन्हीं दो पर निछावर कर दिया। हिन्दी साहित्य में इनका स्थान बहुत ऊँचा है और अमर है।"

यहाँ तक तो हम भारतीय हिन्दी साहित्य के विद्वानों के मत उनके काव्य तथा हिन्दी साहित्य में उनके स्थान के विषय में देखते आए। अब दो एक सम्मतियों विदेशीय विद्वानों की भी देख लेना अधिक उचित होगा। क्योंकि भारतेन्दु जी का सम्मान विदेश में क्या है यह विदेशी आलोचकों की सम्मतियों से ही ज्ञात हो सकता है।

अंगरेजी साहित्य के सुप्रसिद्ध समालोचक ग्रीन्स महोदय ने भारतेन्दु जी की रचनाओं के विषय में लिखा है,—

"He Possessed a wonderful power of infusing his own enthusiasm into the minds of others. He was a man keenly alive, interested in many persons and many matters. Brilliant perhaps rather than scholarly his genius enabled him to accomplish with comparative ease what many cannot achieve by much steady, Patient labour There are manifested imagination and the power of description combined with humour and pathos. His poetry generally

speaking, cannot be called simple His style varies greatly, at times clear, at other times difficult अर्थात्

[उनमें अपने उत्साह को दूसरे तक पहुंचा देने की अद्भुत शक्ति थी उनमें तीव्र जीवना शक्ति के साथ साथ अनेक पुरुषो तथा अनेक विषयो की ओर एक साथ उन्मुख रहने की प्रवृत्ति थी । जो कार्य बहुत से लोग सतत प्रयत्न करने पर भी पूरा नहीं कर पाते उसे ये अपनी विद्वता नहीं बुद्धिमयी प्रतिभा की सहायता से अपेक्षाकृत सरलता के साथ पूरा कर लेते थे । उनकी यह शक्तिया कल्पना, वर्णन शक्ति, हास्य और करुणा है । उनका काव्य साधारणतया सरल नहीं है उनकी शैली में बड़ी विभिन्नता है, वह कभी स्पष्ट रहती है और कभी दुरुह]

A History of Hindi Literature में F.E. Keay, M.A., महोदय भारतेन्दु जी के काव्य तथा प्रतिभा के विषय में अपने विचार इस प्रकार प्रकट कर रहे हैं:—

“Harishchandra wrote also on various subjects including history, patriotism, religious devotion and love. He was also the author of many humorous verses. Next to his plays his love poems are considered to be the best part of his work. Love and mirth are prominent characteristics of his poetry, which is full of power. He must be reconed amongst the great writers of Hindi Lit. He used chiefly the Braj Bhasha dialect. Harishchandra also did much to cultivate interest in Hindi Poetry. To accomplish this he started a magazine called Harish Chandra, in which he published a number of old texts with much other matter. अर्थात्

[हरिश्चंद्र ने इतिहास देशप्रेम, भक्ति आदि विभिन्न विषयों पर रचनायें की हैं। उनकी बहुत सी हास्यपूर्ण कविताएँ सर्व श्रेष्ठ मानी जाती हैं। प्रेम और हास्य उनकी कविता के विशेष गुण हैं और इनमें पर्याप्त प्रभावशीलता है। अद्यतन ही उनकी गणना हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ लेखकों में होनी चाहिए। उन्होंने प्रधानतः बृजभाषा का ही प्रयोग किया है। हरिश्चंद्र जी ने हिन्दी कविता के प्रति जनता में रुचि उत्पन्न करने के लिये बहुत कुछ किया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होंने हरिश्चंद्र चंद्रिका नाम की पत्रिका निकाली जिसमें उन्होंने कई प्राचीन ग्रन्थ तथा अन्य सामग्री प्रकाशित की।”]

उक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतेन्दु जी का व्यक्तित्व हिन्दी साहित्य-क्षेत्र में अत्यन्त महान था। उनमें अपने गौरव की रक्षा की शक्ति तथा मौलिक विचार धारा का समावेश था उनकी दृष्टि उदार थी। साहित्य को नवीन प्रगति पर ले चलने की अद्भुत क्षमता थी। उनके प्रयत्नों में अपनी भाषा, अपने देश वेष की सुरक्षा का भाव छिपा था। उनमें असीम शक्ति और विलक्षण प्रतिभा थी और यह अत्युक्ति नहीं है कि हिन्दी के लिये वे वरदान स्वरूप थे। उनमें युगान्तर उपस्थित करने के सब गुण और सब शक्तियाँ विद्यमान थी ३५ वर्ष की थोड़ी ही आयु में उन्होंने जो कुछ कर डाला वह १०० वर्ष के जीवन में भी बहुतों से पूरा नहीं पड़ा सकता। यद्यपि उनके नश्वर शरीर की अब स्मृति मात्र शेष है; किन्तु उनके कार्यों के रूप में उनका यश सदैव के लिए अमर है। ऐसे ही महात्माओं के लिए भर्तृहरि का कथन है:-

“नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम्” ।

